केरल ज्योति

जुलाई 2023

ISSN 2320-9976
UGC Care - List Sr. No.58

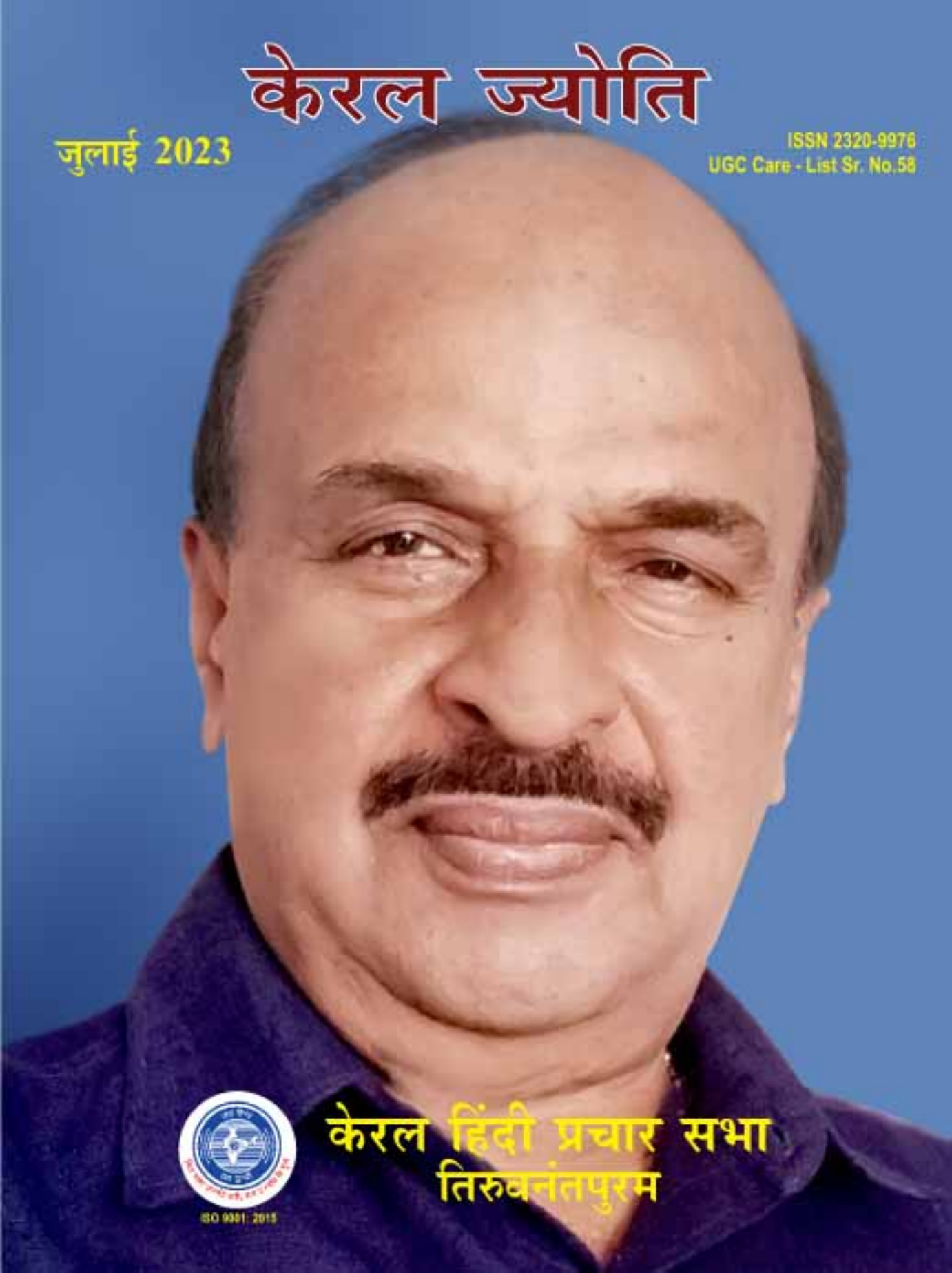

केरल हिंदी प्रचार सभा
तिरुवनंतपुरम

ISO 9001: 2015

सुगम हिंदी परीक्षा का पुरस्कार वितरण सम्मेलन (कण्णूर, कासरगोड जिला) का उद्घाटन श्री.संतोषकुमार पी. एम.पी. पय्यन्नूर में कर रहे हैं।

पय्यन्नूर नगरसभा अध्यक्ष श्रीमती ललिता के.वी. पुरस्कार वितरण कर रही हैं।

श्री. सुनिलकुमार के.एन. मलंकरा क्रिस्तीय सभा का श्रेष्ठ अध्यापक पुरस्कार स्वीकार कर रहे हैं।

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो.(डॉ). एन.रवींद्रनाथ
डॉ. के.एम. मालती
प्रो.(डॉ.) आर. जयचन्द्रन
प्रो.(डॉ). जयश्री.एस.आर

परामर्श मंडल

डॉ.तंकमणि अम्मा एस
डॉ.लता पी
डॉ. रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक/संपादकीय दायित्व

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

सदानन्दन जी
श्रीकुमारन नायर एम
प्रो.रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 60 दल : 4 अंक: **जुलाई 2023**

अनुक्रमणिका

संपादकीय	5
डॉ. बालशंकर मन्नत्त से आकस्मिक मिलन और अप्रत्याशित विछोह - **अधिवक्ता मधु.बी**	6
डॉ. बालशंकर मन्नत को हार्दिक श्रद्धांजलि - **डॉ.मधुबाला जयचंद्रन**	7
हरिशंकर परसाई के राजनीतिक व्यंग्य की प्रासंगिकता – **डॉ. ज्योति.एन**	8
दलित जीवन का अंकन मलयालम साहित्य में कहाँ तक संभव हो पाया! - **डॉ. मोहनन वी.टी.वी.**	11
कमलेश्वर के 'डाकबंगला' में अभिव्यक्त युग-जीवन के यथार्थ **डॉ. पूर्णिमा.आर**	14
न्यू मीडिया और विज्ञापन - **डॉ. नवीन कुमार**	19
शोषण एवं अधिकार के प्रश्न : दलित स्त्री कविता - **डॉ.प्रमोद कोवप्रत**	22
बाज़ारवाद और तकनीक के दौर में हिंदी समाचारपत्र - **डॉ.रजनीश कुमार मिश्रा**	25
संजीव के उपन्यासों में आदिवासी जीवन की आर्थिक समस्याएँ - **अंजना.ए.एस**	28
'नौकर की कमीज़' उपन्यास में व्यक्त निम्न-मध्य वर्गीय जीवन **अंजना प्रसाद.एस**	31
उदयप्रकाश की कविता में स्त्री - **मंजुला.पी.एस**	33
'ज़माने में हम' में चित्रित स्त्री जीवन का यथार्थ -**डॉ.लालीमोल वरगीस.पी.**	36
क्या मधुमेह जीवनशैली से जुड़ी बीमारी है? -**डॉ.सौम्या.एम.सी**	39
धर्मस्थल उपन्यास में राजनीतिक चेतना - **अश्वती.ए.डी**	41
हिंदी महिला आत्मकथा पर एक विहंगम दृष्टि - **डॉ.नजुमा.एस.हक्कीम**	43
दूनी गाँठ की गठरी - **मूल : के.एल. पॉल** **अनुवाद : प्रो.डी.तंकप्पन नायर व अधिवक्ता मधु.बी.**	46

मुखचित्र : स्व. डॉ. बालशंकर मन्नत्त

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- ***आजीवन चंदा : रु. 2500/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 250/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Brnach

अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : मुख्य संपादक : 9995680289 संपादक : 7898515222
E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.com

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
जुलाई 2023

संपादकीय

कलाविद् डॉ.बालशंकर मन्नत को हार्दिक श्रद्धांजलि

बहुमुखी प्रतिभा के धनी, बाल साहित्य-रचना के क्षेत्र के प्रमुख हस्ताक्षर, तलिरु नामक बाल पत्रिका के सफल संपादक, महात्मा गाँधि विश्वविद्यालय, कोट्टयम के शैक्षिक प्रौद्योगिकी का परामर्श दाता और केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी के तिरुवनंतपुरम में स्थित कूटियाट्टम केंद्र के निर्देशक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त डॉ.बालशंकर मन्नत का निधन 12 जून 2023 को हुआ। केरल में हिंदी शिक्षा एवं संस्कृति के क्षेत्र के लिए उनका तिरोधान एक अपूरणीय क्षति है। उनका कर्मक्षेत्र फिल्म निर्माण, फिल्मों का निर्देशन और विशिष्ट ग्रंथों के संपादनआदि था और वे बालसाहित्य रचना में भी संलग्न थे। केरल हिंदी प्रचार सभा को उनके अनूठे व्यक्तित्व एवं अतुलनीय प्रतिभा का परिचय तब मिला जब उन्होंने केरल हिंदी प्रचार सभा द्वारा संचालित आचार्य हिंदी शिक्षक प्रशिक्षण केंद्र में "कला और सौंदर्य शास्त्रीय शिक्षा" के अध्यापक के रूप में अपना कार्यभार संभाला।

उनकी प्रतिभा की विशालता की कोई सीमा नहीं। बाल साहित्य पर उन्होंने सोलह से अधिक कृतियों की रचना की है। चित्रकला में रुचि रखनेवाले उन्होंने 900 बाल साहित्य रचनाओं का संपादन ही नहीं बल्कि उनकी अभिकल्पना भी की है। फिल्म के क्षेत्र में भी उनका योगदान कम महत्व का नहीं है। उन्होंने अनेक वृत्त-चित्रों का निर्माण और निर्देशन किया। उनकी निगरानी में "बच्चों के द्वारा बच्चों के लिए" फिल्म का निर्माण किया गया है जो दुनिया में इस तरह का प्रथम प्रयास है। इस प्रकार फिल्म जगत से जुड़े हुए बालशंकर मन्नत जी फिल्म सेंसर बोर्ड के सदस्य भी रहे। उनकी शैक्षिक योग्यताएँ बी.एस सी, बी.एड, एम.एड(समाज विज्ञान), एम.एड (कला और संस्कृति) और पीएच.डी (शिक्षा) है। उनके द्वारा निर्मित कई फिल्में और वीडियो काफी चर्चित हैं। उन्होंने तीन फोटो प्रदर्शिनियाँ आयोजित की हैं जिनके विषय हैं 1. यू.एस.एस.आर-सिंगपूर यात्राएँ 2. वयोवृद्ध और 3. तिरस्कृत फूल।

उन्होंने अनेक राष्ट्रों में यात्रा की है जिसके कारण उनको जीवन का व्यापक अनुभव प्राप्त था। उन्होंने यू.एस.ए, ग्रीस, जापान, सिंगपूर, यू.एस.एस.आर, चीन, पोलंड, इंगलैण्ड और गल्फ देशों की यात्रा की है। उनको जीवन के विपुल अनुभव प्राप्त हुआ जिसे उन्होंने अपने छात्रों को बाँटा करता था। छात्रों के लिए वे एक आराध्य व्यक्ति थे। उन्होंने अपने शिष्यों में इतना स्नेह और वात्सल्य उंडेला कि उनकी क्षति से उनके छात्र अत्यंत गहरे दुःख में डूब गए। सभा में यद्यपि उन्होंने दीर्घकाल की सेवा नहीं की थी तथापि उनकी सेवा अत्यंत मूल्यवान थी। केरल हिंदी प्रचार सभा उनकी विशिष्ट सेवाओं का स्मरण करती है और उस महान आत्मा को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

डॉ. बालशंकर मन्नत्त से आकस्मिक मिलन और अप्रत्याशित विछोह

अधिवक्ता मधु.बी

अक्तूबर 2021 का एक दिन मेरे जीवन में एक अविस्मरणीय दिन था जिसे मुझसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। उस दिन प्रसन्न वदन के साथ एक अप्रत्याशित अतिथि आये स्व. डॉ.बालशंकर मन्नत्त। एक सीधा-सादा मनुष्य जिनके मुख में उस समय भोलापन झलक रहा था। उस समय मैं सभा के मंत्री के कार्यालय में उपविष्ट था। अतिथि महोदय ने कुछ शब्दों में अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं 'Art' विषय का अध्यापक हूँ। यदि आप मुझे अनुमति देंगे तो आचार्य बी.एड. ट्रेनिंग कॉलेज में हफ्ते में दो-एक क्लास लूँगा। इस के लिए वेतन की कोई समस्या ही नहीं है।

वस्तुस्थिति यह थी कि सचमुच उस समय एक आर्ट अध्यापक की जरूरत थी। इसलिए उनकी नियुक्ति उसी नवंबर महीने में ही हुई। उन्होंने ट्रेनिंग कॉलेज के कम्यूनिटी कैंप का कार्यभार भी सहर्ष संभाला ही नहीं बल्कि अपने अंतिम समय तक अत्यंत दक्षता, निपुणता एवं कुशलता से अपना कर्तव्य निभाया। धीरे धीरे उनकी विविध कलाओं के प्रति गहरी रुचि एवं अगाध प्रागल्भ्य का पांडित्य मुझे मिलने लगा। उनको संगीतशास्त्र (musicology) और वाद्यों (musical instruments) का गहरा ज्ञान था। संगीतादि अनेक कलाओं में उनकी गहरी जानकारी से उनके छात्र मंत्रमुग्ध हो जाते थे। उनको वाद्यवृंद (orchestra) एवं वाद्यसंगीत (instrumental music) में असीम नैपुण्य था।

डॉ.बालशंकर मन्नत्त की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे साहित्य एवं फिल्मी जगत से भी सक्रियता से जुडे हुए थे। उन्होंने बालसाहित्य की सोलह पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने 900 बालसाहित्य कृतियों के संपादन के साथ उनकी अभिकल्पना भी की है। मन्नत्तजी ने लगभग 26 शैक्षिक तथा वृत्तचित्रों (documentary film) का निर्माण भी UNICEF, DPD, DPED एवं SCERT के लिए किया है जो काफ़ी चर्चित हुआ है। दिल्ली में स्थित सांस्कृतिक मंत्रालय (Ministry of Culture) से उन्हें सीनियर फेलोशिप मिली है। उन्होंने (1) Voyage through USSR 2) The Aged और 3) Neglected Flowers शीर्षकों से तीन फोटो प्रदर्शनियों का आयोजन किया है जिनकी भूरि भूरि प्रशंसा की गई है। कला साहित्य फिल्म निर्माण आदि क्षेत्रों की विशिष्ट सेवाओं के लिए वे अनेक पुरस्कारों से भी अलंकृत हुए हैं।

छात्रों के लिए उनका जीवन स्वयं एक संदेश है। उनकी दृष्टि में कोई भी वस्तु फालतू नहीं है। खाली बोतलों, बरतनों और रद्दी कागजों से अनेक कलात्मक चीज़ों का निर्माण ही नहीं किया बल्कि ऐसी चीज़ों का निर्माण करने के लिए छात्रों को प्रेरणा भी देते थे। सचमुच वे एक अनुकरणीय व्यक्तित्व हैं जो सभा के ट्रेनिंग कॉलेज के लिए प्रेरणास्रोत रहेंगे। उनके वियोग से संतप्त परिवार के शोक में सभा भी शामिल होती है। दिवंगत आत्मा को हार्दिक श्रद्धांजलियाँ!

मंत्री, केरल हिंदी प्रचार सभा

डॉ. बालशंकर मन्नत को हार्दिक श्रद्धांजलि

डॉ.मधुबाला जयचंद्रन

केरल हिंदी प्रचार सभा में आचार्य हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय में अध्यापक के रूप में कर्मरत डॉ. बालशंकर मन्नत के देहांत के वृत्तांत से ट्रेनिंग कॉलेज के सारे अध्यापक और छात्र अतीव दुखी हुए। वे छात्रों के प्रियंकर अध्यापक थे। वे तन्मयता के कारण उन छात्रों को कला और सौंदर्य शास्त्र पढ़ाते थे। उन्होंने केरल विश्वविद्यालय के डिपार्टमेंट ऑफ एड्युकेशन से डॉ. वेदमणी मानुवल के निदेशन में पी एच.डी. की उपाधि पाई। उन्होंने तदनंतर कला और सांस्कृति के क्षेत्र में सक्रियता से भाग लिया और साथ ही साथ वे कई संस्थाओं से भी जुड़ने लगे।

डॉ.बालशंकर मन्नत जीवन भर व्यस्त रहे। वे बालसाहित्य इंस्टिट्यूट में संपादक रहे। ह्रस्व चित्रों के निर्माण और निर्देशन में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। उन्होंने तिरुवनंतपुरम में स्थित कूटियाट्टम केंद्र के निदेशक और सोपानम इंस्टिट्यूट ऑफ पेर्फोमिंग आर्ट्स के सीनियर फेल्लो आदि रूप में भी महत्वपूर्ण सेवा की है। वे विश्व हिंदू परिषद् और 'बालगोकुल' के जिला स्तर के अध्यक्ष थे।

यशस्वी मन्नत्तु पद्मनाभन की पौत्री स्व. डॉ. सुमतिक्कुट्टी अम्मा का पुत्र थे दिवंगत डॉ.बालशंकर मन्नत। एन.एस.एस कॉलेज से सेवामुक्त प्रोफसर सरला देवी उनकी पत्नी है। उनका पुत्र सचिनशंकर मन्नत विख्यात ए.आर. रह्मान इंस्टिट्यूट में संगीत निर्देशन में कार्यरत है। उनकी बहू निवेदिता सचिन है। उनकी पुत्री रीति शंकर मन्नत सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कार्यरत है और दामाद हरीष गोपालकृष्णन है जो यू.के में है। कलाप्रेमी और संगीत प्रेमी उनके निधन से ट्रेनिंग कॉलेज के सारे छात्र, और अध्यापक उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित करते हैं।

हरिशंकर परसाई के राजनीतिक व्यंग्य की प्रासंगिकता

डॉ. ज्योति.एन

राजनीति का उद्देश्य लोगों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए उनके हित में काम करना है। जब राजनीति अपने मार्ग से भटकती है, अपनी सीमाएँ लांघती है, तब विनाश और पतन शुरू होता है। आज राजनीति में यह स्पष्टतः नजर आ रहा है कि स्वार्थी राजनीतिज्ञों की पद-पैसा-प्रतिष्ठा की भूख उन्हें हिंसक तक बना रहे हैं। राजनीति से स्वार्थी व अपराधी तत्त्वों को जल्द ही दूर न किया गया तो लोकतंत्र को तबाह कर क्रूर राजतंत्र का बीज फिर से बो दिया जाएगा- इस तथ्य को अनेक लेखकों ने साहित्य के माध्यम से आम जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है। उनमें हरिशंकर परसाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

हरिशंकर परसाई आज़ाद भारत के एक ऐसे अग्नि धर्मी सचेत व्यग्यकार हैं, जिन्होंने जन-जन की आशा, आकांक्षा और जीवन-संघर्ष को नजदीक से देखा-परखा एवं अभिव्यक्त किया है। अध्ययन और अनुभवों के भंडार से परसाई जी ने मानव-समाज के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों और विकृतियों पर बड़ी गंभीरता से व्यंग्य लेखन का कार्य किया । आपने समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त ढोंग, आडंबर, पाखंड, अन्याय, भ्रष्टाचार और मानवीयता के दूषित चरित्र का चित्राकन अपने साहित्य में किया है । उनकी व्यंग्य रचनाओं की ओर नजर डालें तो पता चलता है कि उन्होंने हमेशा राजनीतिक छद्मों का पर्दाफाश किया है। परसाई ने आज की राजनीति का खूब अध्ययन अत्यन्त बारीकी से किया है तथा इस निष्कर्ष पर आया है कि आज की राजनीति मनुष्य की वांछनीय इच्छाओं की प्राप्ति का माध्यम नहीं रह गयी है, बल्कि वैयक्तिक मसलें सुलझाने की एक विसात भर रह गयी है। परसाई की मार्मिक एवं तीव्र आघातकारी व्यंग्य-बाण से न तो सत्ताधारी शासक वर्ग बच पाया है और न ही जन-सामान्य का चारित्रिक ढोंग ही। यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से रचनाओं से गुजरें तो पता चलेगा कि परसाई की रचनायें आज के सड़े-गले एवं गंदे राजनीतिक यथार्थ का खुला दस्तावेज़ ही है।

हरिशंकर परसाई ने अपने समय की राजनीति को बदलते आयामों में मूल्यांकित किया है तथा राजनीति से उत्पन्न मोहभंग की यथार्थ-चेतना को चित्रित किया है। लगातार खोखली होती जा रही हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में पिसते मध्यमवर्गीय मन की सच्चाइयों को उन्होंने बहुत ही निकटता से समझा है। सामाजिक पाखंड और रूढ़िवादी जीवन-मूल्यों की खिल्ली उड़ाते हुए उन्होंने सदैव विवेक और विज्ञान-सम्मत दृष्टि को सकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

अपनी रचना 'सदाचार का तावीज़' में वर्तमान सरकारी व्यवस्था के सर्वव्यापी भ्रष्टाचार पर परसाई ने व्यंग्य प्रहार किया है। कहानी के राजा ने जब विशेषज्ञों द्वारा भ्रष्टाचार को खोजने और हटाने का प्रयास आरंभ किया तब पता चल गया कि सिंहासन भ्रष्टाचार का पहला शिकार है। कन्दरवासी साधु द्वारा निर्मित सदाचार का तावीज़ हर एक कर्मचारी की भुजा पर बाँधने का निर्णय लिया गया। परिणाम यह हुआ कि भ्रष्टाचार की जड़ें अधिक गहरी होती गयीं। इकतीस तारीख महीने का आखिरी दिन राजा वेश बदलकर सरकारी कार्यालय पहुँचे और कर्मचारी को पाँच का नोट दिखाया तो उसने उसे लेकर जेब में रख लिया। राजा असमंजस में पड गए। उन्होंने तावीज़ पर कान लगाया तो स्वर निकल रहे थे 'अरे, आज इकतीस है। आज तो ले ले।'[1]

परसाई ने अपनी रचनाओं में झूठे राजनीतिज्ञों के मुखौटे उतारे हैं, जो गांधीजी तथा जवहरलाल जी

का नाम लेकर लूट-खसोट करते हैं। अपने को आज का कांग्रेसी कहकर वोट बटोरते हैं। आजीवन कुर्सियों और पदों से चिपके रहते हैं तथा जात-बिरादरी के नाम पर चुनाव जीतते हैं। खादी के नीचे उनका असली रू प होता है। वे अपने अनाचारों को खादी की खाल ओढ़कर छिपाता है। 'सज्जन, दुर्जन और कोपसजन' नामक लेख में परसाई कहते है 'मैंने कहा आप बताइए कि हमने तटस्थ विदेशनीति क्यों अपनाई और उससे हमें कौन-से फायदे हुए?' झटके से उठे और तकिये पर खड़े हो गए। दोनों भुजायें उठाकर बड़े जोर से चिल्लाये, महात्मा गांधी की जय, पंडित नेहरू की जय।'[2]

'भेडे और भेड़िए' कहानी में परसाई यही स्पष्ट करते हैं कि वोट में विजयी होने के लिए आज के नेता अपना रूप, बाल-बाल किस प्रकार बदल देते हैं। वे बताते हैं "हर भेड़िए के आसपास दो चार सियार रहते ही हैं।"[3] वर्तमान युगीन राजनीतिक परिस्थितियों एवं विसंगतियों को परसाई ने बड़े कटु व्यंग्य में उभारा है कि भेडिया जिस तरह अपने शिकार के बाद जूठन खिलाकर दो चार सियार रखता है. जो जूठन खाकर बाद में हुआ हुआ करके भेडिए की जय जयकर बोलते हैं, ठीक यही हाल आज के नेताओं और उनके चारों तरफ रहनेवाले चापलूसों का है, जो आज की राजनीति को गंदा करते रहते हैं।

'अकाल उत्सव' में परसाई ने आज के स्वार्थ, अवसरवादी एवं अपना उल्लू सीधा करनेवाले राजनीतिक नेताओं पर प्रहार किया है। जब देश अकाल से त्रस्त है तब भी अपने मंत्रि-पद के बारे में चिंतित नेताओं पर परसाई ने यों व्यंग्य किया है- 'मैं एक विधायक से पूछता हूँ, अकाल की स्थिति क्या है? वह चिन्तित होता है। मैं सोचता हूँ, वह अकाल से चिन्तित है। मुझे बड़ा सन्तोष होता है। वह जवाब देता है, हाँ अकाल तो है, ज्यादा नहीं। कोशिश करने से जीता जा सकता है। सिर्फ ग्यारह विधायक हमारी तरफ आ जायें, तो हमारी मिनिस्ट्री बन सकती है। हर आदमी का अपना अकाल होता है। इन्हें सिर्फ ग्यारह 'क्विण्टल' विधायक मिल जायें, तो इनके अकाल की समस्या हल हो जाए सत्ता की।"[4]

'जमाखोर की क्रान्ति' में जनता को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए चौबीसों घंटे भाषण देने वाले नेताओं पर परसाई ने व्यंग्य किया है। भाषणों के सहारे ये नेता बड़े-बड़े आश्वासन और उपदेश देते हैं। भाषणोपरान्त नेता अपने आश्वासनों को न निभाते हैं और उपदेशों को आचरण में नहीं लाते हैं। परसाई ने ऐसे भाषणबाज नेताओं पर कटु प्रहार किया है। 'जितने उपदेश और भाषण इस देश का नेता देता है, उतने किसी अन्य देश के नेता नहीं देते और हर विषय पर, सबेरे कृषि विज्ञान पर और शाम को अरविन्द दर्शन पर 25 सालों से रोटी की जगह भाषण ही मिल रहा है।"[5] आज भी भाषण ही मिल रहे हैं जो आज की गंदी राजनीति का स्पष्ट उदाहरण ही है।

'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में परसाई ने नेताओं में व्याप्त स्वार्थ, आज की राजनीतिक दुःस्थिति, नेताओं द्वारा दिए गए झूठे वादे और गणतंत्र दिवस पर होनेवाले झूठे दिखावे की खूब खबर ली है। परसाई कहते हैं- 'स्वतन्त्रता दिवस भीगता है और गणतंत्र दिवस ठिठुरता है। प्रधानमंत्री विदेशी मेहमान के साथ खुली गाड़ी में निकलती है। रेडियो टिप्पणीकार कहता है, 'घोर करतल ध्वनी हो रही है। लेकिन हम नहीं बजा रहे हैं, फिर भी तालियाँ बज रही हैं। मैदान में जमीन पर बैठे वे लोग बजा रहे हैं, जिनके पास हाथ गरमाने के लिए कोट नहीं है। लगता है गणतंत्र दिवस ठिठुरते हुए हाथों की तालियों पर टिका है।"[6]

आज, नेताओं की पद- लिप्सा निरन्तर बढ़ती रही है। पद प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार के हीनकर्म करने से वे न हिचकते हैं। उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए वे सब प्रकार की तरकीबों को अपनाते हैं। परसाई ने ऐसे पद लोलुप, स्वार्थी राजनीतिज्ञों की पोल खोल दी है। परसाई ने ऐसे एक नेता का चित्रण किया है जो "दिन में विधान सभा की कुर्सी पर न बैठने देने के कारण रात को खिड़की तोड़कर रात भर अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठता है।"[7]

जुगुप्सात्मक घिनौनी राजनीति को घिनौनी भाषा में ही प्रकट करने की कला में परसाई की निपुणता अनुपम है। 'हम बिहार से चुनाव लड़ रहे हैं' में परसाई एक नेता के मुँह से सफाई दिलवाते है- " हर आदमी में मेरी जैसी फुरती नहीं है। देखिए न जनता पार्टी बनायी। फिर मैं स्वतन्त्र पार्टी बनायी। फिर मैं स्वतन्त्र पार्टी में चला गया। फिर भारतीय क्रान्ति दल से निकलकर जनता पार्टी बना ली। मेरे लिए राजनीतिक दल अण्डरवियर है। ज्यादा दिन एक ही को नहीं पहनता, क्योंकि बदबू आने लगती है।"[8]

वर्तमान समाज में निरीह जनता मूक भेड़ जैसी हो गयी है। ऐसी जनता किस तरह बेगानों को अपना नेता चुन लेती है, इस पर परसाई ने बड़ा सशक्त व्यंग्य किया है। आजकल के भेड़िए राजनीतिज्ञों की हरकतों का उन्होंने बड़ी निर्भीकता से पर्दाफाश किया है। जनता धूर्त मक्कार लोगों को अपना भाग्य निर्णायक बना लेती है, इस ओर इनका इशारा है, "यह एक भेड़िये की कथा नहीं है, यह सब भेड़ियों की कथा है। सब जगह इसका प्रचार हुआ और भेड़ों को विश्वास हो गया कि भेड़ियों से बढ़कर उनका हित रक्षक और कोई नहीं है।"[9] बेचारी भोली-भाली जनता ठगी जा रही है, अपना भाग्य अपने शोषितों के हाथों सौंप रही है, जो आज का यथार्थ है।

हरिशंकर परसाई ने कलम के जरिए आज के झूठे मक्कार राजनीतिज्ञों पर करारा व्यंग्य किया है, साथ ही साधारण जनता के कष्टमय जीवन पर भी सहानुभूति प्रकट की है। उनकी राय में, 'राजनीतिज्ञों के लिए हम नारे और वोट हैं। बाकी के लिए हम गरीबी, भूख, बीमारी और बेकारी हैं। मुख्यमंत्रियों के लिए हम सरदर्द हैं।"[10] अपनी कुर्सी के लिए नेता किसी भी सीमा तक जा सकता है। इस प्रकार के राजनीतिज्ञों के हाथों में 'राष्ट्रीय एकता' खोखला बन पड़ा है। भारत में विद्यमान सभी राजनीतिक दलों, उनकी नीतियों और उनके झूठे नेताओं पर परसाई ने जमकर विरोध किया है। इस प्रकार परसाई की व्यंग्य रचनायें आज के गंदे सड़े-गले राजनीतिक यथार्थ का खुला दस्तावेज़ बन गयी हैं।

व्यंग्य को हिंदी साहित्य में एक विधा के रूप में पहचान दिलाने वाले हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को मनोरंजन की पुरानी एवं परंपरागत परिधि से बाहर निकालकर समाज कल्याण से जोड़कर प्रस्तुत किया। इनके माध्यम से उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार और शोषण पर प्रहार किए हैं। परसाई जी ने सदियों पहले जिन समस्याओं को अपनी तूलिका से खींच रखा है , वे आज और भी घिनौने और चालाकीपूर्ण स्वरूप में समाज में दिखाई दे रही हैं। ऐसे में निस्संदेह कहना होगा कि परसाई वर्तमान में और ज्यादा प्रासंगिक हैं। वे एक कालजयी साहित्यकार हैं, जिन्हें पढ़कर व्यक्ति समस्याओं से छुटकारा पा सकता है। परसाई जी का मानना था कि सामाजिक अनुभव के बिना सच्चा और वास्तविक साहित्य लिखा ही नहीं जा सकता। उनकी रचनाएँ तब तक प्रासांगिक बनी रहेंगी जब तक कि राजनीति में कोई सकारात्मक क्रांति नहीं आती।

संदर्भ ग्रंथ

1. परसाई रचनावली-1,संपादक मंडल कमलाप्रसाद और साथी, पृ.101
2. 'पगडंडियों का ज़माना ', हरिशंकर परसाई, पृ.22
3. परसाई रचनावली-1,संपादक मंडल कमलाप्रसाद और साथी, पृ.102
4. परसाई रचनावली-1,संपादक मंडल कमलाप्रसाद और साथी, पृ.315
5. 'मेरी श्रेष्ठ रचनायें', हरिशंकर परसाई, पृ.102
6. परसाई रचनावली-3, संपादक मंडल कमलाप्रसाद और साथी, पृ.77
7. पगडंडियों का ज़माना ', हरिशंकर परसाई, पृ.30
8. परसाई रचनावली-1,संपादक मंडल कमलाप्रसाद और साथी, पृ.253
9. परसाई रचनावली-1,संपादक मंडल कमलाप्रसाद और साथी, पृ.105
10. 'माटी कहे कुम्हार से' हरिशंकर परसाई, पृ.61

एसोसिएट प्रोफेसर , हिन्दी विभाग
सरकारी महिला महाविद्यालय , तिरुवनंतपुरम।

दलित जीवन का अंकन मलयालम साहित्य में कहाँ तक संभव हो पाया!

डॉ. मोहनन वी.टी.वी.

सन् 1864 में प्रकाशित 'घातक वधम्' मलयालम का पहला उपन्यास है। दलित जीवन का प्रत्यक्ष चित्रण 'घातक वधम्' की विशेषता है। आर्च डीकन कोशी ने 'पुल्लेलि कुंजु' नामक उपन्यास की रचना की। 'पुल्लेलि कुंजु' की विषयवस्तु हिन्दू धर्म में प्रचलित जाति व्यवस्था पर आधारित है। यह उपन्यास ब्राह्मणवादी सामाजिक जीवन पर तीखा प्रहार करता है। सन् 1892 में पोत्तेरी कुंजंबू के द्वारा लिखा गया उपन्यास 'सरस्वती विजयम' प्रकाशित हुआ। ब्राह्मणशाही वर्ग के द्वारा पीडित दलित समाज ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट हो जाता है। उन्हें शिक्षा प्राप्त हो जाती है। चंतुमेनन के द्वारा लिखित 'इंदुलेखा' तथा 'शारदा' नामक दोनों उपन्यासों में हिन्दू धर्म के उच्च वर्ग में प्रचलित अनाचारों का चित्रण है। एक तरफ सामंती जीवन के प्रतिनिधि नंपूतिरि तथा नायर समुदायों का पतन तथा दूसरी तरफ अंधविचारों का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए उपन्यासकार चंतुमेनन ने तत्कालीन यथार्थ जीवन का चित्रण किया।[1] घातक वधम, पुल्लेलि कुंजु तथा सरस्वती विजयम् को मूलतः दलित जीवन को परखने वाले उपन्यास मान सकते हैं। अतः उन्नीसवीं सदी में रचित उपन्यासों में सामंती जीवन के विरुद्ध विद्रोह का चित्रण है तथा तत्कालीन दलित जनता का जीवंत चित्रण है।

बीसवीं सदी में श्रीनारायण गुरु ने पुरोगामी साहित्यान्दोलन का नेतृत्व किया। "श्रीनारायण गुरु ने यह पहचान ली कि भारत की सारी विषमताओं का मूल कारण जाति व्यवस्था है। इसलिए उन्होंने इसके विरुद्ध आंदोलन चलाया। श्रीनारायण गुरु ने अपने अनुयायियों को जागृत किया कि जाति व्यवस्था ब्राह्मण वर्ग का कपट प्रबंध है, जिसके द्वारा वे दलितों को लूट रहे हैं।"[2] श्रीनारायण गुरु ने यह माना है कि शिक्षा के माध्यम से दलित अपनी अस्मिता को पहचान सकता है और वह आगे बढ़ सकता है। सन् 1888 में अरुविप्पुरम में उन्होंने शिव लिंग की मूर्ति की स्थापना की और उसे ईष़वा (दलित) शिव माना है। जब मंदिरों में दलितों का प्रवेश निषेध था तब श्रीनारायण गुरु ने खुले मंदिरों की स्थापना की और वहीं स्कूलों की स्थापना की। जब गाँधीजी ने उनसे छुआ-छूत के बारे में पूछा तब गुरु ने यह कहा कि "दलितों को शिक्षा के साथ-साथ संपत्ति भी चाहिए।"[3] उन्होंने सन् 1903 में श्रीनारायणधर्मपरिपालनयोगम की स्थापना की जिसके माध्यम से उन्होंने जाति-व्यवस्था के विरुद्ध अनेक कार्य किये। मलयालम के प्रिय कवि कुमारनाशान श्रीनारायणगुरु के शिष्य थे। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से जनता को जागृत करने का प्रयास किया। श्रीनारायणधर्मपरिपालनयोगम् (एस. एन. डी .पी) की स्थापना के बाद अय्यंकाली ने तिरुवितांकूर में पुलय समुदायों को एकत्र करने की कोशिश की। उन्होंने 'साधुजनपरिपालनसंघम्' नामक दलितान्दोलन की शुरुआत की। चट्टंबी स्वामी तथा उनके शिष्य नीलकंठ तीर्थ पादर, तीर्थपाद परमहंस आदि ने ब्राह्मणवाद की बौद्धिक नींव तोड़ दी। सहोदरन अय्यप्पन ने जातिवाद को तोड़ने के उद्देश्य में 'जातिराक्ष सदहनजाथा' का नेतृत्व किया। वी.टी.भट्टतिरिप्पाड ने ऐसे मंदिरों को जलाने का आह्वान किया जहाँ दलितों का प्रवेश निषेध था।

सामाजिक आंदोलनों के साथ-साथ जातिवाद, छुआ -छूत आदि के विरुद्ध साहित्यान्दोलन भी शुरु हुए। "कुमारनाशान की 'दुरवस्था', पं. करुप्पन की 'जातिक्कुम्मी, सहोदरन अय्यप्पन की 'ईष़वोल्बोधनम्', 'सदेशीयम्' आदि रचनाएँ सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अंग बने।"[4] कुमारनाशान ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों को जागृत किया। उन्होंने जाति-विष को जड़ से तोड़कर फेंकने का आह्वान किया। 'दुरवस्था' में कुमारनाशान ने ब्राह्मण जाति की युवती तथा दलित युवा के विवाह का चित्रण किया। 'घातकवधम्', तथा 'सरस्वती विजयम' के बाद 'दुरवस्था' में दलित नायक का स्थान ग्रहण कर लेता

है। कुमारनाशान ने सन् 1922 में 'चंडालभिक्षुकी' की रचना की जो हिन्दू धर्म के अनाचारों पर प्रहार करता है तथा बौद्ध धर्म की मानविकता का चित्रण है। पं.करुप्पन (1885-1938) एक प्रमुख दलित साहित्यकार थे जिन्होंने दलितोत्थान के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। उन्होंने जाति प्रथा के विरुद्ध कविताएँ लिखीं, नाटक लिखे। बालाकलेशम् (1913), जातिक्कुम्मी (1914), उद्यानविरुन्न (1926) आदि नाटकों में तत्कालीन सामंती जीवन की कुप्रथाओं का वर्णन है। उनके नाटक खुद ऐसे साहित्यान्दोलन थे जिनके द्वारा उन्होंने जाति-प्रथा के विरुद्ध आक्रोश किया।

सहोदरन् अय्यपन का कार्य बिल्कुल सामाजिक आन्दोलन था। उन्होंने सन् 1917 में ईष़वा तथा पुलया जाति के युवाओं के साथ समाज के साथ खाना खाया जो बाद में 'मिश्रभोजन' नाम से अभिहित किया गया। अय्यपन ने उच्चवर्ग के आगे सवाल उठाये। उन्होंने यह माना है कि "संसार में कोई समुदाय दिखाई नहीं देता जो दूसरे समुदाय की सहायता से सुधरे हो। अगर कोई समुदाय दूसरे समुदाय के आगे बाधाएँ पहुँचाते हो तो, उन बाधाओं को दूर करना चाहिए।"[5] उनकी कविताओं में जातिगत अनाचार के विरुद्ध आक्रोश तथा गुलामी की तस्वीर तोड़ने की उम्मीद है।

चंगंपुष़ा कृष्ण पिल्लै ने दलितों के उन्नमन के लिए अनेक कविताएँ लिखीं। लेकिन वे दलित कवि नहीं थे। उनकी वाष़क्कुला, कोटुंकाट्टु, वनवर्षनांदि, तीप्पोरी, इन्नत्ते निला आदि कविताओं में सामाजिक भेद-भाव दूर करने की माँग है। वाष़क्कुला तथा रमणन के माध्यम से कवि पुरोगामी साहित्य का आह्वान करते हैं।

सन् 1937 को जीवत् साहित्यान्दोलन का जन्म हुआ। के. दामोदरन के पाट्टबाक्की, रक्तदानम् आदि नाटक इस आन्दोलन से जन्मे दो हैं। सन् 1944 में अन्य पुरोगामी साहित्यकारों के साथ जुड़कर 'पुरोगामी साहित्यान्दोलन' के नाम से जीवत् साहित्य संघम का नया रूप बन गया। सन् 1945 को इस श्रेणी में साहित्य का सुवर्ण वर्ष माना जाता है। जी. शंकर कुरुप्पु, वल्लत्तोल नारायण मेनन, चंगपुष़ा कृष्णपिल्लै आदि मलयालम के श्रेष्ठ पुरोगामी साहित्यकार इस साहित्यान्दोलन के प्रवक्ता बन गये। तकष़ी शिवशंकर पिल्लै ने 'तोट्टियुटे मकन' (1989) तथा 'रंडिटंगष़ी' उपन्यासों की रचना की जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने जातिगत भेदभाव का पर्दाफाश किया। दलित जीवन का अंकन करते हुए तोप्पिल भासी ने 'निंगलेन्ने कम्यूणिस्टाक्कि' नाटक की रचना की। के. जी शंकर पिल्लै की 'कषंडी', अय्यप्पपणिकर की 'कुटुंबपुराणम्' तथा 'कुट्टनाटन दृश्यंगल', सच्चिदानंदन की 'पुलयप्पाट्टु', कटम्मनिट्टा की 'कुरत्ति' आदि कविताएँ दलितोन्मुखी परिप्रेक्ष्य के उदाहरण हैं। पोल चिरक्करोट का 'पुलयत्तरा', सारा थॉमस का 'दैवमक्कल', के.पानूर का 'केरलत्तिले अफ्रीका', 'केरलत्तिले अमरीका', वत्सला का 'नेल्लु', के. जी. बेबी का 'नाटु गद्दिका', मावेली मंरम आदि रचनाएँ पाठकों के आगे दलित जीवन की पीड़ाओं को पेश करती हैं। दलितों के उन्नमन के लिए इन गैर दलित साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिये हैं। मगर, इनकी रचनाओं को पूर्णत: दलित साहित्य नहीं कहा जा सकता। इन्हें हम 'दलितोन्मुखी सहानुभूति साहित्य' माना जा सकता है।

टी. के.सी. वटुतला, नारायन आदि दलित साहित्यकारों ने दलितों की अस्मिता को जागृत किया। उन्नीस सौ पचास के दशक में टी. के. सी. ने दलितों को जागृत करने तथा जाति व्यवस्था को तोड़ने साहित्य का आश्रय लिया। उन्होंने यह माना है कि दलित शिक्षा के माध्यम से अपनी अस्मिता पहचान सकता है। कट्टयुम कोय्तुम, चंगलकल् नुरुंगुन्नु, ननवुल्ला मण्णु, चुंकारंति अटा, नीयुम ञानुम, हृदयत्तुटिप्पुकल, चारित्रवती, पेण चेन्नाया, व्यक्ति माहात्म्यम्, रंडु तलमुरा, टी के सी युटे चेरु कथकल आदि उनकी कथा रचनाएँ हैं। अपने पात्रों के माध्यम से टी.के.सी ने यह साबित करने की कोशिश की है कि सिर्फ धन-दौलत से पुलय समुदाय (दलित) उन्नति नहीं प्राप्त कर सकता है, बल्कि संगठन की आवश्यकता भी है। शिक्षा के माध्यम से आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति प्राप्त कर सकता है। डी. राजन् ने अपना उपन्यास 'मुक्कणी' में

दक्षिण तिरुवितांकूर के दलित 'परयर' के जीवन को जनता के सम्मुख पहुंचाया। नारायन ने आदिवासी 'मलयरयन्' को केन्द्र में रखकर 'कोच्चरेत्ति' (1998) की रचना की। उनका दूसरा उपन्यास 'उरालिक्कुटिं' भी आदिवासी समाज को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। दलित संघर्ष को लेकर सी. अय्यपन ने 'उच्चमयक्कत्तिले स्वप्नंगल'नामक कहानी संग्रह लिखा। उनकी कहानियों में जाति के उच्चवर्ग के विरुद्ध आक्रोश है। पी.ए.उत्तमन का प्रथम कथा संकलन है 'सुंदरपुरुषन्मार'।

दलित कवियों ने कविताओं के माध्यम से 'मुख्यधारा' साहित्य के विरुद्ध झकझोर आक्रमण किया। वी.के.नारायणन, राघवन अत्तोली, के.के. एस. दास, जी.शशि, कल्लरा सुकुमारन, सी.पी. प्रकाश, ए.के.राजन, ऐ.के.रवीन्द्र राज, के.सी.काट्टाक्कटा आदि दलित कवियों की कविताएँ दलित साहित्य की भूमिका अदा करती हैं। मलयालम की दलित कविताओं में समता की गूँज ही नहीं, आक्रोश एवं आन्दोलन का आक्रमण भी हैं। नारायण की कविता 'एकलव्यन ञान' (1992) में दलित जीवन की आक्रामकता एवं क्रान्तिकारिता भरी पड़ी है।

कवियूर मुरली एक प्रमुख दलित लेखक है जिन्होंने दलित साहित्य को महत्वपूर्ण योगदान दिये। दलित भाषा, पुरनानूर-ओरु पठनम् आदि उनकी प्रमुख शोध रचनाएँ हैं। टी. एच.पी. चेतारश्शेरी (टी.हरिप्रसाद) ने दलितों की संस्कृति, जीवन, इतिहास आदि का खूब अध्ययन किया और दलित साहित्य पर अब वे खूब लिख रहे हैं। 'डॉ.अंबेडकर' उनका प्रमुख ग्रंथ है। केरल चरित्रत्तिले अवगणिक्कप्पेटात्ता एटुकल्, केरलत्तिन्टे मलरवाटी (वयनाडु), केरलचरित्रधारा, चेरनाडु चरित्रशकलंगल्, पोय्कयिल श्रीगुरू देवन, केरल चरित्रत्तिनोरु मुखवुरा आदि अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी में 'अय्यंकालीः द फर्स्ट दलित लीडर' नामक ग्रंथ लिखा। सन् 1983 में पूप्पना कृष्णन कुट्टी ने अंबेडकर पर मलयालम में प्रथम जीवनी लिखी । धनंजय कीर के द्वारा लिखा गया 'अंबेडकर लाइफ एंड मिशन' नामक ग्रंथ का मलयालम अनुवाद पी. के.राजन तथा के.सी. पुरुषोत्तमन दोनों ने मिलकर किया।

आर्थिक दृष्टि से केरल के लोगों को तीन वर्गो में बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग वे है जो उच्च वर्ग के थे जो सामंती व्यवस्था के प्रतिनिधि थे, जिन्होंने हिन्दूधर्म की जाति व्यवस्था को बनाये रखना चाहा। वे यह चाहते थे कि जाति व्यवस्था का अंत होते ही सामंती व्यवस्था भी खत्म हो जाएगी, उनका आर्थिक धरातल की हानि हो जाएगी। इसलिए, उन्होंने दलितों के आन्दोलन को परास्त करने की हमेशा कोशिश की। दूसरे स्तर के लोग जो मध्यम वर्ग के थे और एक तरफ वे उच्च वर्ग के प्रीति-पात्र बनने की कोशिश करते रहे और दूसरी तरफ उन्होंने दलितों के दुख को दूर से देखा और वे सहानुभूति के साहित्य लिखते रहे। तीसरा वर्ग वे हैं जो आर्थिक तथा जातिगत दृष्टि से निचले तपके के थे जिन्होंने पहले जातिगत भेदभाव को दूर करने के लिए आन्दोलन चलाया। उन्हें यह मालूम था कि जब तक वे जाति के पाश में बंधे रहे तब तक उन्हें कोई उन्नति नहीं मिलेगी। उनमें कुछ ने ईसाई धर्म को स्वीकारा। अधिकतर हिन्दू धर्म के साथ ही जुड़े रहे और जातिगतभेदभाव को दूर करने के लिए साहित्य का आसरा लेने लगे। उन्होंने स्वानुभूति का साहित्य लिखा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एन. कृष्ण पिल्ले, कैरलीयुटे कथा, कोट्टयम्, एन. बी.एस, 1975, पृ. सं. 62
2. Swapan k Biswas, Gods, false Gods & untouchables, new Delhi: Orion Books (Second Edition), 1999, पृ.सं. 365
3. के.सी. पुरुषोत्तमन, दलित साहित्य प्रस्थानम्, केरल साहित्य अकादेमी, 2008,पृ.सं. 203
4. पी. के .पोक्कर, पुरोगमन कवितायुटे वर्तमानम्, देशाभिमानी साप्ताहिक, 29 अगस्त 1999
5. बालचन्द्रन वटक्केटत्तु, करुत्त भाषयुडे सान्निध्यम्, मातृभूमि साप्ताहिक, 2 फरवरी 1997

असिस्टेंड प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
सर सईद कॉलेज, केरल शोध निदेशक, कण्णूर विश्वविद्यालय

कमलेश्वर के 'डाकबंगला' में अभिव्यक्त युग-जीवन के यथार्थ

डॉ. पूर्णिमा.आर

साठोत्तरी युग सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन का युग है आदमी की आस्था-आकाँक्षाओं में परिवर्तन नज़र आने लगा जीवन की संवेदना बदली, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और साँस्कृतिक पहलुओं में बडे बदलाव आये। देशविभाजन के परिणामस्वरूप बेरोज़गारी की समस्या बढी,साथ ही साथ संत्रास, भय, अकेलापन, अजनबीपन, अलगाव, उब, और कुंठा से लोग बेचैन हो गए। देश के हरेक कोने में पश्चिम की औद्योगिक क्रान्ति और वैज्ञानिक प्रगति का प्रभाव बढने लगा।

महानगारीय सभ्यता के विकास के साथ लोग गाँवों से कटकर नगरों की ओर आकृष्ट हुए। परंपरागत जीवन मूल्यों से अलग होने के कारण उनकी मानसिकता में बडे बदलाव आये। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढने लगा,जीवन मूल्यों में बदलाव आये। वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियों के कारण संसार के कोने कोने से जनता का आपसी सबन्ध मज़बूत हुआ। मशीनीकरण के फलस्वरूप वे यंत्रों से ज़्यादा निकट आए,पर मनुष्य से ज़्यादा दूर होने लगे। उनके सामने परंपराएँ मूल्यहीन सिद्ध हुई।

मूल्य संक्रमण के इस दौर में नारी जीवन भी बदलने लगा। सामाजिक-साँस्कृतिक बदलाव का गवाह मात्र बनकर वह रह नहीं सकी। परिवेश में जो बदलाव नज़र आए, इससे उसके वैयक्तिक और सामाजिक जीवन भी एकदम बदले। परंपरा के बन्धनों को तोडकर आगे बढने की कोशिश में वह लगी रही। ज़िन्दगी के अभावों से संघर्ष करके अपने जीवन को सार्थक बनाने की अपूर्व क्षमता वह दिखाई। किसी के सामने हार मानने को वह तैयार न थी। जकडी हुई स्थितियों के बीच एक नया रास्ता ढूंढने का साहस उसने दिखाया।

कमलेश्वर के 'डाक बंगला' उपन्यास में ऐसी एक स्त्री की संघर्ष गाथा है। नायिका का नाम है इरा। 'डाक बंगला' साठोत्तरी उपन्यास है। कमलेश्वर साठोत्तर कालीन उपन्यास के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर भी है। साठोत्तरी रचनाकारों में कमलेश्वर की पहचान सफल उपन्यासकार,सिद्धहस्त कहानीकार और लोकप्रिय फिल्मकार के रूप में है। आज़ादी के बाद के लेखकों में वे अग्रणी है। उन्होंने मध्यवर्गीय जनता को केन्द्र में रहकर उपन्यास रचा। उनके उपन्यासों की कथाभूमि कस्बों से लेकर बडे शहर के विभिन्न क्षेत्रों तक फैली हुई है। डां.मनूभाई गाँधी के शब्दों में "कमलेश्वर जन समुदाय की तकलीफों में हिस्सा बंटाने में कभी पीछा नहीं रहते और सबसे ज़्यादा ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्होंने बदलते हुए हालत में आम भारतीय की मानसिकता और व्यवहार के बदलाव को बडी खूबसूरती के साथ अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने कला साधनों को व्यापक बनाया है। अपने पात्र,गाँव,कस्बे,नगरों महानगरों के हैं। वे पात्र ज़िन्दगी के पूरे बदलाव के साथ उनकी कहानियों में आये हैं। उन्होंने जो कुछ भी कहा है उसे अनावश्यक दार्शिनिकता का जामा पहनाकर नहीं कहा"[1]।

उपन्यास में मध्यवर्गीय आदमी की वैचारिकता झलकती है। मुख्य पात्र इरा के ज़रिए लेखक अकेलेपन को भोगते स्त्री के संघर्षपूर्ण जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हैं। इरा की जीवन-यात्रा को आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। जीवन में प्रेम,अतृप्ति,वैयक्तिक स्वातंत्र्य और निर्णय-दौर्बल्य के विविध पक्ष है। भूमिका में व्यक्त किया गया है "डाक बंगला दमित स्त्री का इकरारनामा भी है। लेखक ने इरा का चरित्रांकन मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में किया है तथा उसी के माध्यम से डाकबंगला के प्रतीकार्थ को रूपायित करने की चेष्टा की है"[2]।

डाकबंगला का संपूर्ण कथानक इरा पर केन्द्रित है। इरा के जीवन की उथल-पुथल उपन्यास में वर्णित है। अपने जीवन की त्रासदी को पूरी जिजीविषा के साथ उसने झेला है। इरा की यह जिजीविषा उपन्यास का प्राण है। अपने जीवन की दुखद परिस्थिति के सामने वह कभी हारती नहीं, किसी भी दुखद हालत में मन को वह स्थिर रहती है। नये नये रास्ते ढूँढ लेती है,जीवन को पूरे अत्मविश्वास के साथ आगे बढाती है। सौन्दर्य के प्रति दीवानी इरा जीवन को सौन्दर्यात्मक नज़र से देखती है। लेखक के ही शब्दों में "वह अन्धेरी घाटी में चमकता हुआ आकाशदीप है"[3]।

कमलेश्वर ने इस उपन्यास में पूर्वदीप्ति शैली का सहारा लेते हुए इरा की जीवन-यात्रा को आत्मकथात्मक शैली में चित्रित किया है। मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में इरा का चरित्राँकन किया गया है। तिलक एक कथाकार है। कश्मीर के पहलगाम में इरा तिलक से मिलती है। कश्मीर में उस समय सोलंकी नांमक आदमी भी आता है,जिसका इरा से पहले ही परिचय था। तिलक और सोलंकी दोनों इरा से विशेष आकृष्ट है। इरा के प्रति दीवाना होकर भी उसके प्यार पाने में तिलक असफल होता है। इरा कई अवसरों पर तिलक को रहस्यमयी-सी लगती है। कभी वह तिलक से आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करती है, कभी वह सोलंकी से नज़दीकी प्रकट करती है। स्त्री-पुरु ष की तमाम छोटी-छोटी सामाजिक और नैतिक धारणाओं को बडी सरलता से वह नकार देती थी। तिलक को इरा के बाहरी और आन्तरिक व्यक्तित्त्व में द्वन्द्व दिखाई देता है। वह बाहर से जितनी निस्संकोच,मुक्तऔर निर्बन्ध दिखती थी, अन्दर से उतनी ही संकोचशील, परंपरानुरागी और भीरु थी। कभी वह तिलक के सामने एक कल्पनाशील दार्शिनिक की भाँति बातें करती थी, कभी वह एक साधारण स्त्री के समान व्यावहारिक तरीके से व्यवहार करती थी। जो भी हो इरा के मन की थाह को पाने में तिलक असमर्थ निकलता है।

इरा की आत्मा का कोना कोना यादों से भरा हुआ है। एक दिन अपने जीवन की सारी कहानी वह तिलक से बताती है। तिलक से उसका कथन है- "मैं बार-बार अकेली रह गई। बडे गहरे-गहरे घाव लगे हैं मुझे। और उन घावों का खून अब कहीं भीतर चट्टानों की तरह जम गया है"[4] ।

इरा का बचपन हास-विलास के साथ बिताती थी। हर तरफ ताज़गी और रंगों से भरी हुई थी उसकी दुनिया। माँ के अभाव में नौकरानियों की देखरेख में वह पली बढी। आर्मी में काम करनेवाले पिता उस के लिए बिल्कुल अजनबी था। माँ की मौत के बाद पिता उसके लिए एक तरह से खो ही गए थे।

काँलज के दिनों में नाटक,नृत्य और संगीत से वह विशेष आकर्षित हुई। इस समय उसने कई नाटक भी लिखे जो काँलज की पत्रिका में छपे जाते थे। काँलज के वार्षिक समारोह में सहेलियों ने मिलकर इरा से लिखा पहला नाटक 'सपनों का राजकुमार' खेला। स्वयं इरा ने इसमें अभिनय भी किया। उन्हीं दिनों शिमला में नाटक समारोह हुआ। शहर के एक क्लब के साथ इरा शिमला गई। इरा के युनिवर्सिटी के सहपाठी विमल उस क्लब के सदस्य थे। दोनों का सौहार्द धीरे-धीरे प्यर में बदल गया।

इरा और विमल दोनों रंगमंच के लिए समर्पित थे। किन्तु इरा के पिता को यह अच्छा न लगा था। उनके लिए नाटकों में भाग लेना और नंगे होकर नाचने-गाने में कोई फर्क नहीं था। लेकिन इरा का मन पक्का था। वह अपने विश्वास से हटना न चाहती थी। काँलज की पढाई के आखिरी दिनों में इम्तिहान देकर इरा पिता के पास गई। ड्रामा कांपटिशन में जाने से पिता ने उसे रोका। पिता की मर्ज़ी के खिलाफ नाटक की तैयारी के लिए वह विमल के पास लौट आई। वह विमल के साथ खुल्लमखुल्लम रहने लगी। नाटक कांपटीशन के बाद दो साल तक विमल ने दिल्ली में स्थाई रंगमंच स्थापित करने की जी-तोड

कोशिश की, पर कर्ज़ के सिवा कुछ भी हाथ न आया।

विमल ने बतरा नामक आदमी के फ्लाट में इरा के लिए नौकरी का प्रबन्ध किया। बतरा दंगे के समय रावलपिंडी से भागकर आया हुआ शरणार्थी था। वह सरकारी अफसरों से दोस्तियाँ गाँठकर व्यापारियों तथा अन्य ज़रूरतमंदों का काम करवाता था। बतरा और इरा के संबन्ध को लेकर विमल शंकालू हो जाता है। क्लासिकल नाटकों से आजीविका चलाने में विमल असमर्थ हुआ। वह फैक्टरियों के ड्रामेटिक क्लबों के साथ दशहरे-दीवाली पर रामलीला तक करने लगा। विमल का व्यवहार एकदम रूखा हो गया। एक दिन इरा को अकेला छोडकर विमल बंबई चला गया। विमल के अभाव में इरा अपना सामान उठाकर बतरा के फ्लैट में पहूँची।

दिनों के बाद बतरा के फ्लैट में शीला नामक एक औरत आयी। पत्नी के रूप में बतरा ने इरा से उसका परिचय कराया। शीला कुछ दिनों तक वहाँ ठहरी। फिर कुछ बताये बिना कहीं चली गई। बाद में इरा ने समझा कि वह बतरा की पत्नी नहीं थी। बचपन में दोनों एक दूसरे को चाहते थे। विभाजन के दंगों के बाद वे जुदा हो गए। अब अमीर व्यक्तियों के यहाँ बीवी का नकाब लगाकर रहती है।

शीला के अभाव में बतरा की बेहाली इरा को सता रही थी। दोंनों का अकेलापन उन्हें पास लाता है। दोनों एक साथ रहने लगे। खुशी भरे दिनों के बीच शीला फिर वापस आयी। इरा को उसने बतरा के घर से बाहर निकलवाया।

इरा के जीवन के तीसरी और बहुत दुखद दौर यहाँ शुरु होती है। डॉ.चन्द्रमोहन के बच्चों को देखभाल करने की नई नौकरी उसे मिली। विधुर डाक्टर इरा के प्रति दीवाना हुआ। पहले वह डाक्टर से शादी करने से इनकार करती थी। अन्त में मज़बूरी वश वह शादी के लिए तैयार हो जाती है। नागा विद्रोहियों के हमले में किसी ने गलती से डाक्टर पर गोली मारी। डाक्टर की मृत्यु हुई। डाक्टर की मृत्यु के बाद इरा कश्मीर चली जाती है। वहाँ तिलक से मिलती है। तिलक और बतरा के दोस्त सोलंकी के साथ वह डाकबंगले में ठहरती है और कश्मीर की सैर करती है। अन्त में विमल के वापस आने का समाचार पाकर वह उनके पास लौट आती है। वह बीमार विमल का इलाज करवाती है। कुछ महीनों की चिकित्सा के बाद विमल का जान खो जाता है।

इरा से शादी करने की इच्छा तिलक प्रकट करती है। किन्तु वह इसके लिए तैयार न होती है। नई नौकरी की तलाश में वह सफल निकलती है। नौकरी पाते ही वह दिल्ली से चंडीगढ की और रवाना हो जाती है।

उपन्यास में अनेक पात्र आते जाते है। विमल,बतरा,डाक्टर,तिलक, और सोलंकी इनमें प्रमुख हैं। डाकबंगले के मुसाफिर कुछ देर के लिए वहाँ टिकते हैं,फिर नयी जगह खोजकर वहीं से चले जाते हैं। उसी प्रकार इरा के जीवन में साहचर्यवश अनेक पुरुष आते हैं कुछ दिन के लिए उनके साथ संबन्ध स्थापित करते हैं,फिर उसे छोडकर चले जाते हैं। इरा का पहला प्यार विमल से हैं, दोनों आपस में नज़दीक होते हुए भी इरा को जानने-पहचानने में विमल असमर्थ निकलता है। फिर बतरा से संबन्ध स्थापित करने पर भी उसे निभाने में वह कामयाब न होती है। डाक्टर से विवाह करने पर भी वह उसे पूर्णतया स्वीकार न कर सकती।

साठोत्तरी युगीन बेरोज़गारी और आर्थिक विपन्नता की समस्याएँ उपन्यास की सारी समस्याओं का आधार है। औद्योगिक क्रान्ति और वैज्ञानिक प्रगति से समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। लेकिन नाटक और नृत्य जैसी कलाएँ यहाँ नगण्य होने लगा। यहां इरा के पिता आधुनिकता का प्रतिनिधि पात्र है। रंगमंच की दुनिया से उसे नफरत है। दिल्ली ड्रामा

कम्पटीशन में जाने से वह अपनी बेटी को रोकता है। विमल और इरा दोनों रंगमंच के लिए समर्पित थे। कितनी प्यारी दुनिया है रंगमंच की। जन्दिगी के सारे उतार-चढाव,दुख-सुख,पाप-पुण्य,सब दो घण्टों की परिधि में सिमट आते हैं। पूरा जीवन,घर-गृहस्थी, सब रिश्ते,घृणा और प्यार,भावनाएँ और कल्पनाएँ इस छोटी-सी दुनिया में क्षणों में परवान चढती है"[5]। शहर में नाटक के क्लब थे। लेकिन उनका ट्रूप बिखर जाता है। विमल जैसा प्रतिभाशाली कलाकार परिवार नियोजन के लिए प्रचारवादी ड्रामों में हिस्सा लेने लगा था। स्थाई रंगमंच स्थापित करने की जी तोड कोशिश में कर्ज़ ही हाथ आया। सब कुछ करते हुए भी वह बुरी तरह से पराजित हुआ था।

शीला के चरित्र में विभाजनोत्रर भारत के नारी जीवन का खुला तस्वीर नज़र आता है। शीला और बतरा के बीच का प्यार विभाजन के दंगों के बीच टूट जाता है। शीला के पिता दंगों में मारा गया। अपनी बहनों और माँ को लेकर वह दंगों से भाग जाती है। जन्दिा रखने के लिए वह आदमियों की बीवी बनकर रहती है। वह हर घर में बीवियों का नकाब लगाकर रहती है। बडे-बडे लोगों से मेल-मुलाकात करके वह आपनी शारीरिक और आर्थिक ज़रूरतों को पूरा करती है।

बतरा के व्यक्तित्त्व में भी विभाजन के दंगों का प्रभाव पडा है। दंगों में वह रावलपिंडी से भागकर दिल्ली आया था। इरा बतरा के सामने पूर्ण रूप से समर्पण करती है, वह उसके बच्चे को कोख में धारण भी कर लेती है। लेकिन बतरा दवा देकर गर्भपात कर लेता है। क्योकि वह नितान्त एकाकी होकर रहना चाहता है। अपने समर्पण का कोई निशान वह कहीं छोडना न चाहता है। इरा से वह बताता है "ये दुनियावी रगडे मुझसे नहीं चल सकते...मैं गृहस्थी नहीं चाहता,मुझे सिर्फ वे चीज़ें चाहिए जो मेरे जीते-जी मेरे काम आएँ, आगे कुछ नहीं चाहिए"[6]। रावलपिंडी से बतरा दिल्ली आता है। जीवन के प्रति यह नई संवेदहीनता साठोत्तरी युग के मानव की पहचान है। जीवन में अन्तर्बाह्य जटिलता के कारण व्यक्ति इस तरह अनासक्त और संवेदनहीन हो जाता है।

साठोत्तरी युग में व्यक्ति की विवाह संबन्धी मान्यताओं में काफी बदलाव आये। इरा विमल से शादी न करती है,किन्तु उसके साथ रहने लगती है। विमल के अभाव में वह बतरा के घर में अभय पा लेती है। उसके साथ शारीरिक संबन्ध जोडती है और कुछ दिनों तक चैन से रहती है। दोनों के संबन्ध का कोई गारण्डी नहीं। शीला के आने पर उसे बतरा को छोडना पडता है। ट्यूटर-गार्जियन का काम मिलते ही वह बतरा के घर से चली आती है। संबन्धों की यह संवेदनहीनता साठोत्तरी युग जीवन की विशेषता है।

देश विभाजन के बाद बेरोज़गारी, संत्रास,भय, अजनबीपन, अलगाव,उब, कुण्ठा, विसंगति और अहं की भावना से व्यक्तिकुण्ठित हुआ है। साठोत्तरी युवावर्ग का प्रतिनिधि पात्र है विमल। नाटक के प्रति वह पूर्णतया समर्पित है। इरा पर वह एकान्तिक अधिकार चाहता है। बतरा के प्रति जब उसका मन शंकालू हो जाता है,वह अन्तर्मुखी हो जाता है। सभी लोगों को वह तब शंक की निगाह से देखता है। अवसाद और पराजय की भावना उसके मन को सताने लगी। अपनी पराजय और अकुलाहट को लिए वह इरा को अकेला छोडकर चला जाता है। सरकार,सत्ता,पूँजीवाद और शोषण के खिलाफ वर्ग-संघर्ष में शामिल हो जाता है। आन्ध्र में क्रन्तिकारियों के दल में शामिल हो जाता है। उसका व्यक्तित्त्व एकदम बिखरा और टूटा हुआ है। नौकरी करने के लिए वह इरा को प्रेरित करता है, किन्तु बतरा के यहाँ नौकरी दिलवाकर स्वयं पछताता भी है।

जब पुरुष का व्यक्तित्त्व परेशानियों में बिखर देता है, स्त्री का व्यक्तित्त्व एकदम मज़बूत हो जाता है। जिजीविषा की भावना उसके मन में भर उठता है। इरा के व्यक्तित्त्व के कई पहलुओं को उपन्यास में देखा जाता है। लेखक के शब्दों में "प्रकृति के जितने भी

रूप हो सकते हैं,सब उसमें छिपे थे। उसकी कोमलता,कठोरता, पुरुषता, नीरसता और मस्ती-सभी कुछ उसमें था"[7]। उसका प्रेम और लगाव विमल से है। यह प्रेम विमल से शुरु होकर विमल में समाप्त हो जाता है। बतरा के प्रति उसके मन में सहानुभूति थी। कभी अकेले में बतरा की दशा सोच-सोचकर वह रो लेती थी। अपना और बतरा का अकेलापन उसे बहुत अलग-अलग भी नहीं लगता था। दोनों की ज़िन्दगी को उसने टूटी हुई समझी। बतरा की अकुलाहट और परेशानी में उसने विमल की छाया देखा था। पति होने के बावजूद भी डाक्टर से अपने पत्नी धर्म का पालन वह नहीं कर सकती। किन्तु डाक्टर की खराबी हालत में वह उसको संभालती है। जो कुछ भी हो उसका मरना इरा से सहा नहीं जा सकता था। डाक्टर की मृत्यू के बाद उसके दोनों बेटों को वह अपने साथ ले जाना चाहती थी।

विमल द्वारा उपेक्षित हालत में इरा एकदम हताश और अपने को असुरक्षित महसूस करती है। तिलक से वह बताती है "हर लडकी एक कवच ढूँढती है-चाहे वह पति का हो,भाई या बाप या किसी झूठे रिश्तेदार का। इस कवच के नीचे वह अच्छा या बुरा हर तरह का जीवन बिता सकती है। उसे पहनने के लिए जैसे एक साडी चाहिए वैसे यह कवच भी चाहिए। इस असुरक्षित दशा में वह बतरा के घर में शरण लेती है"[8]। डाक्टर के प्रति उसके मन में किसी भी प्रकार की उद्दाम भावना नहीं उठती थी, किन्तु निराश्रित हालत में वह डाक्टर से शादी कर लेती है। उपन्यास की समाप्ति पर एक मज़बूत और आत्मविश्वास भरी औरत के रूप में उसका रूप निखरता है। अब किसी कवच की चिन्ता उसे सताती नहीं। विमल की बरबादी का एक कारण वह अपने को भी मानती है। उस बरबादी से उसे मुक्ति दिलाने के लिए वह भरसक कोशिश करती है। जो कुछ वह विमल के लिए कर सकती थी, सब कुछ कर देती है। लेकिन विमल की मृत्यू पर वह हताश और निराश हो जाती है। इरा नई जन्दिगी की खोज में है। दिल्ली में रहना वह पसन्द न करती है। दिल्ली से बाहर चंडीगढ में उसने नौकरी के लिए एप्लाई किया। चंडीगढ में नौकरी मिलते ही वह तिलक से अलविदा कहकर वहाँ की ओर रवाना होती है। वह पूरी तरह स्वतंत्र होकर जीवन बिताना चाहती है। जिजीविषा-भरे मन से।

मोह और मोहभंगों के बीच इरा का यह संघर्ष पाठकों में आत्मविश्वास की चेतना जगाता है। जीवन की मज़बूरियों ने उसके व्यक्तित्त्व को मज़बूत बनाया।पुरु ष के आश्रय में अपने को सुरक्षित महसूस करनेवाली इरा अपने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व को पहचानने में कामयाब निकलती है।स्वातंत्र्योत्तर युगीन नारी जीवन का,युग-चेतना का,सामाजिक जीवन का, साँस्कृतिक बदलाव का सही लेखा-जोखा इस उपन्यास में है। प्रत्यक्षत यह नारी चेतना को उद्घाटित करनेवाली रचना है,साथ ही साथ इसमें साठोत्तरी महानगरीय और मध्यवर्गीय जीवन समस्त विशिष्टताओं के साथ उद्घाटित हुआ है।

ग्रन्थ-सूची

1. कमलेश्वर छोटे और आम आदमियों के रचनाकार-संपादक मधुकर सिंह पृ.सं-372 (मनूभाई गाँधी के लेख)
2. डाकबंगला भूमिका
3. डाकबंगला पृ.सं.7
4. डाकबंगला पृ.सं.24
5. वही पृ.सं-27
6. वही पृ.सं - 56
7. वही पृ.सं - 41
8. वही पृ.सं - 36

असोसियेट प्रोफसर, हिंदी विभाग
सनातना धर्मा कॉलेज, आलप्पुष़ा

न्यू मीडिया और विज्ञापन

डॉ. नवीन कुमार

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक की समाप्ति पर मीडिया के विषय में कहा जा सकता है कि विज्ञापन कॉरपोरेट मीडिया को निर्णायक रूप से नियन्त्रित करने की भूमिका में आ गया है। यह समय बाजार और विज्ञापन की मीडिया पर विजय का समय है। कुछ समय पहले यूनेस्को की पहल पर बने मेकब्रइड कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में चिंता जताते हुए कहा था कि "हालांकि हम जानते हैं कि मीडिया के लिए आमदनी जरूरी है लेकिन ऐसे तरीके निकाले जाने चाहिये जिससे राष्ट्रीय संचार के प्रवाह पर बाजार के व्यावसायिक हितों के बुरे असर को कम किया जा सके।"[1] परन्तु वर्तमान में मैकब्रइट कमीशन की इस रिपोर्ट का प्रभाव विपरीत ही दिखाई दे रहा है। आज मीडिया इंडस्ट्री का 80 से 90 प्रतिशत तक पैसा विज्ञापनदाताओं से आ रहा है। मीडिया अपने पाठकों और दर्शकों को इन विज्ञापनदाताओं के हाथों बेच रहा है। यह भी कहा जा रहा है कि "अगर किसी के पास दर्शक या पाठक हैं तो उसकी पैकेजिंग की जा सकती है, उसकी कीमत लगाई जा सकती है और उन्हें विज्ञापनदाताओं को बेचा जा सकता है। मीडिया पर विज्ञापनदाताओं का दबाव निरंतर बढ़ने का कारण यह है कि सारा मीडिया मुख्य रूप से विज्ञापन पर आधारित होता जा रहा है। परिणामस्वरूप मीडिया वही है जो विज्ञापनदाता उसके लिये तय करते हैं।

जहाँ तक समाचार पत्रों का सम्बन्ध है तो उनमें विज्ञापनों के बढ़ते प्रभाव पर प्रेस परिषद के चेयरमैन जस्टिस जी.एन.रे. ने भी चिंता जताई है। उनके अनुसार विज्ञापन प्रेस की आमदनी का मुख्य स्त्रोत बन गए हैं। महानगरों में तो प्रेस की आमदनी का 70 से 80 प्रतिशत विज्ञापनों से ही आ रहा है। समाचार-पत्रों की नीति और विचारों पर विज्ञापनों का दखल जितना लगता है, उससे ज्यादा हो चुका है। ग्राहकों को लुभाने के लिये दिये जा रहे विज्ञापनों में तेजी से बढ़ोतरी के साथ अखबारों की आमदनी जोरदार होती है। इस वजह से अखबारों का सर्कुलेशन बढ़ा है।"[2] वास्तविकता तो यह है कि मीडिया की असल आमदनी अपने पाठक अथवा दर्शकों से नहीं बल्कि विज्ञापनों से होती है। यदि कोई अखबार या चैनल अपने संचालन के लिए पाठक अथवा दर्शक से मिले पैसे पर निर्भर हो तो वह कहीं अधिक स्वतंत्र होकर कार्य कर सकता है क्योंकि ऐसी स्थिति में उसके मुख्य खरीदार विज्ञापनदाता न होकर पाठक और दर्शक होंगे और बाजार के नियमों के कारण मीडिया उन्हें अच्छी सामग्री देने पर बाध्य होगा। मीडिया को पाठकों की रुचि के साथ-साथ उसके हितों का भी ध्यान रखना पड़ेगा, परन्तु जैसे मीडिया विज्ञापनों पर निर्भर हो जाता है तो उसकी कंटेंट तैयार करने की स्वायत्ता पर पाबंदियाँ लग जाती हैं।

वर्तमान मीडिया और विज्ञापन का संबंध बहुत रोचक हो गया है। कोई भी समाचार पत्र केवल इसलिए सफल नहीं कहलाता कि वह अनेक लोगों तक पहुँचता है। क्योंकि अगर कोई समाचार पत्र अनेक लोगों तक पहुँचता है किन्तु उसके पर्याप्त विज्ञापन नहीं मिलते तो वह जल्द ही तबाह हो सकता है। समाचार पत्रों के कंटेंट पर नियंत्रण रखने का इस समय का सबसे शक्तिशाली माध्यम विज्ञापन ही है, किसी भी समाचार को यदि ज्यादा विज्ञापन मिलते हैं तो वह अपनी न केवल कीमत रख सकता है बल्कि अपने कर्मचारियों को अच्छा वेतन भी दे सकता है। वह पाठकों के लिए सजी-धजी चमकीली सामग्री भी सरलता से प्रस्तुत कर सकता है। विज्ञापनों का मीडिया पर यह महत्त्व इतना बढ़ गया है कि कुछ मीडिया

विश्लेषकों का यह मानना है कि मीडिया का काम सूचना या खबर देना नहीं बल्कि समृद्ध पाठकों और दर्शकों को विज्ञापनदाताओं तक पहुँचाना है।"[3] विज्ञापन दाताओं के दबाव और विज्ञापन पाने के प्रलोभन के कारण ही मीडिया देश और समाज के समृद्ध वर्ग को हर कीमत पर अपने साथ जोड़कर रखना चाहता है। यही कारण है कि वह उन खबरों से परहेज करता है, जो गरीबों या गरीबों के हितों के बारे में हों। इसका नतीजा यह होता है कि वे समुदाय मीडिया से गायब हो जाते हैं जो गरीब हैं।"[4] इसी प्रकार संचार कर्मी दिलीप मंडल के अनुसार "दबाव और प्रलोभन से इतर खुद मीडिया भी लोक से हटकर निरंतर अभिजन यानी एलीट वर्ग के पक्ष में झुकता जा रहा है। अब कई अखबारों में गरीबों, किसानों, विस्थापितों और दूसरे वंचित तबकों की खबरों के लिए जगह काफी कम है। राष्ट्रीय कहे जाने वाले अखबारों में गाँव, आदिवासी, अल्पसंख्यकों के जीवन से जुड़े वास्तविक मुद्दे और सवाल लगभग गायब हैं। विज्ञापनदाता कंटेंट को अपने हिसाब से ढालने में जुटे हैं और मीडिया भी अपने कंटेंट को लगातार विज्ञापनदाताओं की जरूरत के हिसाब से ढाल रहा है। समाचार माध्यम सूचनाओं और विचारों की जगह मनोरंजन का स्थान बनते जा रहे हैं। इसके पीछे सबसे बड़ी वजह विज्ञापन का दबाव है क्योंकि कोई भी विज्ञापनदाता नहीं चाहता है कि उसके चमक-दमक वाले प्रोडक्ट के आस-पास या आगे-पीछे देश की वास्तविकता दिखे या कुछ ऐसा हो जो लोगों को सोचने पर मजबूर करता है। इस तरह मीडिया ने बाजार के दबाव में और बाजार से ज्यादा कमाई करने के लालच में अपने लिए भी एक हद बना ली है।"[5]

न्यू मीडिया पूर्ण रूप से विज्ञापनदाताओं के हाथ की कठपुतली बनता जा रहा है। आज यह भी संभव है कि लाखों लोग जिस अखबार को पढ़ते या चैनल को देखते हों, उसका भी धंधा पिट सकता है, यदि वह विज्ञापनदाताओं की पंसद नहीं है। इसका स्पष्ट उदाहरण ज्यादा पढ़े जाने वाले और ज्यादा सम्मानित डेली हेराल्ड, न्यूज क्रानिकल तथा संडे सिटिजन जैसे समाचार पत्र हैं जो विज्ञापन न मिलने के कारण समाप्त हो गए। मीडिया की अर्थव्यवस्था ऐसी है कि किसी अखबार को अगर भरपूर विज्ञापन मिले तो उसे मुफ्त में बांटकर भी कोई मीडिया संस्थान मुनाफा कमा सकता है। अखबारों की अर्थव्यवस्था में विज्ञापनों का योगदान इस हद तक बढ़ गया है कि दुनिया के विकसित देशों में अखबार मुफ्त भी बांटे जाने लगे हैं। उदाहरण के तौर पर लंदन में दैनिक अखबार 'मेट्रो' को मुफ्त बांटा जाता है। वहां के अंडरग्राउंड रेलवे स्टेशनों में इसका वितरण किया जाता है। इसी तरह सिंगापुर में 'टुडे' नाम का अखबार मुफ्त बांटा जाता है और ये अखबार मुनाफा कमा रहे हैं। वहीं विज्ञापन कम मिलने पर अखबार महंगे हो जाते हैं। इसका उदाहरण पाकिस्तान और बांग्लादेश के अखबार हैं जिनकी कीमत" 6 रूपए से भी ज्यादा है। समाचार-पत्रों के अर्थशास्त्र को समझने के लिए जरूरी है कि इनके राजस्व के स्त्रोतों को समझा जाए। इनकी आय का मुख्य स्त्रोत वह पैसा नहीं है जो पाठक अखबार या पत्रिका पर लिखी कीमत के बदले चुकाते हैं। इनकी आमदनी का सबसे बड़ा स्त्रोत आमतौर पर विज्ञापनों से होने वाली आमदनी है। इस गणित को समझने के लिए दैनिक भास्कर अखबार समूह की कंपनी डी.बी. कॉर्प. ने 2000 में अपना आई.पी.ओ. (शेयर बाजार में उतरना) उतारा था। शेयर बाजार में उतरने से पहले इसने ड्राफ्ट रेड हेयरिंग प्रोस्पैक्टस जमा किया था। प्रोस्पेक्टस में 31 मार्च, 2009 को खत्म हुए साल में कंपनी की आमदनी का कंसोलिडिटेड ब्यौरा दिया गया है। इसमें बताया गया कि कंपनी को बिक्री से 215.86 करोड़ रूपए की आमदनी हुई। इवेंट मैनेजमेंट से 7.5 करोड़ और विज्ञापनों से 725.56 करोड़ रूपये आए जबकि अन्य आमदनी 11.99 करोड़ रही। इस साल कंपनी की कुल आमदनी 960.68 करोड़ रूपये थी। इस आंकड़े को अगर

प्रतिशत में देखें तो कंपनी को विज्ञापन से 75.50 प्रतिशत आमदनी हुई जबकि बिक्री से हुई कुल आमदनी 22.46 प्रतिशत ही थी। बिक्री के आंकड़े में स्टैंड पर होने वाली बिक्री, हॉकरों के जरिए होने वाली बिक्री, कंपनी द्वारा सीधे ग्राहक के घर पर जाने वाली बिक्री और होटलों, एयरलांइस आदि को जाने वाली थोक बिक्री यानी हर तरह की बिक्री शामिल है।"[6] डी.बी. कॉर्प ने जानकारी दी कि वह विज्ञापन स्पेस को विज्ञापन एजेंसियों के साथ ही सीधे ग्राहकों को भी बेचती है। मार्च 2009 में कंपनी का कारोबारी नाता 1,549 मान्यता प्राप्त तथा 2,715 गैर मान्यता प्राप्त विज्ञापन एजेंसियों के साथ था और कंपनी ने कारोबारी साल 2008-09 में 2,51,442 विज्ञापनदाताओं के विज्ञापन छापे।"7 इसी तरह दैनिक जागरण के आमदनी के स्त्रोतों को भी देख सकते हैं। जागरण प्रकाशन के राजस्व का बड़ा हिस्सा विज्ञापनों से आता है। मार्च 2009 में खत्म हुए साल में दैनिक जागरण की कुल आमदनी में विज्ञापनों का हिस्सा 72.12 प्रतिशत है जबकि एक साल पहले यह आंकड़ा 71.91 प्रतिशत था।"[8]

न्यू मीडिया विज्ञापनदाताओं की जरूरत को पूरा करने के लिए कुछ भी करने को तैयार है। उदाहरण के तौर पर फरवरी 2010 में टाइम्स ऑफ इंडिया ने अपने समाचार-पत्र के एक हिस्से को कार के आकार में काटकर पेश किया, जो जर्मनी की प्रमुख कार कंपनी फॉक्स वैगन के विज्ञापन का हिस्सा था। आज किसी भी समाचार-पत्र के पहले पन्ने पर पूरे पेज का विज्ञापन छापना आम बात हो गई है।

आज का मीडिया देश को जगाने, लोगों की समस्याएं मिटाने और समाज को बेहतर बनाने आदि के मायामोह से मुक्त होकर पूंजी और भी लाभ कमाने में लगा है। आने वाले समय में हमारे देश में इस विज्ञापन बाजार के और बड़ा होने की पूरी संभावना है। भारत इस मामले में चीन या पश्चिमी देशों से फिलहाल पीछे है लेकिन हमारा देश भी अब उसी दिशा में दौड़ रहा है, जहाँ बाकी विकसित देश पहुँचे हैं। यदि ऐसा होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब मीडिया की पवित्रता, निष्पक्षता, ईमानदारी और वस्तुनिष्ठता विखंडित हो जाएगी और लोकतंत्र का चैथा स्तंभ धूल धूसरित हो जाएगा।

सन्दर्भ सूची

1. मेनी वायसेस, वन वर्ल्ड, ऑक्सफोर्ड और आई.बी.एच. 1962 पृ. 260
2. 16 नवंबर, 2009 को नेशनल प्रेस डे पर हैदराबाद में दिए गए भाषण का अंश।
3. द ग्लोबल मीडिया, एडवर्ड एस. हरमन और रावर्ट डब्ल्यू. मैक्वेस्नी, भारतीय संस्करण, पृष्ठ 7
4. द मीडिया मोनोपली, बेग बोडिकियान (1992) पृष्ठ 178
5. मीडिया का अंडरवर्ड, दिलीप मंडल पृष्ठ 9-10
6. डी.बी. कॉर्प., रेड हेयरिंग प्रोस्पैक्टस।
7. चार्टड एकाऊटेंट गुप्ता नवीन के एंड कंपनी द्वारा जारी किया गया सर्टिफिकेट पृष्ठ 65
8. जागरण प्रकाशन सालाना रिपोर्ट 2008-09,पृष्ठ 29

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग
पंडित चिरंजी लाल शर्मा राजकीय महाविद्यालय
करनाल

शोषण एवं अधिकार के प्रश्न : दलित स्त्री कविता

डॉ.प्रमोद कोवप्रत

संविधान के तहत स्त्री और पुरुष को समान अधिकार प्राप्त है। मगर स्त्रियों को हमेशा शोषण का शिकार होना पड़ा। स्वतंत्रता, समानता आदि शब्द कभी सिर्फ कागज की बात बन जाते हैं । स्त्री अस्मिता के लिए संघर्ष सदियों से चलता रहता है। फिर भी पुरुष वर्चस्ववाले समाज एवं व्यवस्था में स्त्री को हमेशा अधीन रखने का प्रयास किया गया। दलित स्त्री तिहरे अभिशाप का शिकार बन रही है। एक अर्थ में दलित होने की पीड़ा है, दूसरा स्त्री होने की पीड़ा है, तीसरा दलित स्त्री होने की पीड़ा। वास्तव में अरविंद जैन अपनी पुस्तक औरत होने की सजा में जो भी बातें अनुभव के आधार पर लिखी हैं. बिल्कुल सच साबित होती हैं। क्योंकि स्त्रियों के लिए न्याय हमेशा दूर रहता दिखाई पड़ता है। पूरे समाज में अधिकांश स्त्रियाँ न्यायवंचित रह जाती हैं। ऐसे में दलित स्त्रियों की स्थिति और भी गंभीर और शोचनीय - दयनीय अवस्था में है।"शोषण चाहे मानसिक हो या सामाजिक, आर्थिक हो या धार्मिक , उसके विरुद्ध विद्रोह होगा ही। उसमें समय कितना भी लग सकता है ।जैसे भारत में शताब्दियाँ बीत गयीं । धर्म के नाम पर एक वर्ग को सामाजिक, मानसिक और आर्थिक शोषण सहते हुए लेकिन जैसे ही इस वर्ग में जरा सी चेतना आयी उसके विद्रोह का विस्फोट हुआ। उस विस्फोट का ही परिणाम है दलित साहित्य।"[1] यहाँ हिंदी की दो प्रसिद्ध दलित महिला रचनाकारों की कविताओं की चर्चा यहाँ प्रस्तुत है। रजनी तिलक और सुशीला टाकभौरे ने विशेषकर अपनी कविता में स्त्री शोषण के खिलाफ आवाज उठाई है। इसमें विशेषकर लिंगपरक विभेदीकरण की समस्या को उठाया गया है । स्त्री को तो अपने बुनियादी मानव अधिकारों से वंचित रखने की साजिश पर वे आवाज उठाती हैं।

'पदचाप' रजनी तिलक का एक महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है। काव्य की भूमिका में रजनी तिलक ने लिखा है- "जाति, लिंग भेदभाव की सबसे ज्यादा मार पड़ी दलितों व स्त्रियों पर, विशेष तौर पर दलित स्त्रियों पर । आज़ादी की स्वर्ण जयंती और मानव अधिकार की घोषणा के पचास वर्ष बीत जाने पर भी दलित स्त्रियों की हालत में विशेष परिवर्तन नहीं आया। शिक्षा, राजनीति, प्रशासनिक सेवा, वाणिज्यिक क्षेत्र में उसकी पहुँच नगण्य हैं। अगर वो कहीं है तो शहर की स्लम, धूल व बदबूदार, दूर-दराज गांव- देहातों के बाहर बनी बस्तियों में। इन बस्तियों में शौचालय, पीने का पानी, बच्चों को पढ़ाने के लिए प्राथमिक स्कूल, प्राथमिक चिकित्सालय, यहाँ तक की गांव को जोड़ने वाली सड़कें तक उपलब्ध नहीं है।"[2] इससे दलित स्त्रियों के दैनिक जीवन का पूरा क्षेत्र उभरकर आता है। पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को बराबरी का दर्जा कभी नहीं दिया ।दलित समुदाय में स्त्रियों की स्थिति बहुत खराब है। वहाँ भी अस्मिता का संघर्ष जारी है। जातिभेद की समस्या के साथ स्त्री मुक्ति के संघर्ष को दलित कवयित्रियों ने प्रमुख विषय बनाया रजनी तिलक की तिरस्कार कविता की पंक्तियाँ महत्वपूर्ण हैं- "चुपचाप और जुल्म सहने से / आबाद है तुम्हारा मेरा परिवार/जिसदिन उठाओगी आवाज / फेंक दी जाओगी उठाकर बाहर/ प्रतिकार किया तो प्रताडित की जाओगी"[3]

वास्तव में पिंजरा तोड़ना स्त्री के लिए आसान काम नहीं है। स्त्री मुक्ति का रास्ता काफी संघर्षमय है। मुक्ति में कवयित्री समझती हैं कि पति के साथ कैदी होने के अलावा स्त्री अपने संस्कारों की भी कैदी है। इसलिए खुद से वह आज़ादी चाहती है। द्वेष, मोह, ममता, जीवन, मृत्यु ,जकड़न सबसे मुक्ति चाहती हैं। 'पिंजरा तोड़ कर आई हूँ' कविता में रजनी तिलक एक परिंदा अपने को समझ कर मुक्ति का सपना देखती हैं। मानव अधिकार के नाम पर आवाज उठाने वालों से कवयित्री प्रश्न करती हैं और व्यंग्य भी करती हैं। उनको शंका होती हैं कि बच्चों एवं स्त्रियों के प्रति घोर अन्याय चल रहा है। क्या वह मानव अधिकार नहीं। मानव अधिकार के कार्यकर्ताओं के साथ देने के बावजूद स्त्रियों एवं बच्चों के अधिकारों की रक्षा नहीं होती। "1789 की फ्रांसीसी क्रांति के दौरान

रचित मानवीय अधिकारों के घोषणा पत्र ने प्राकृतिक अधिकारों को कानूनी अधिकारों का स्थान दिया। "[4] मगर दुख एवं शोक के साथ कवयित्री का सवाल महत्वपूर्ण है। तुम्हारा मानव अधिकार कविता में वे कहती हैं- "जानना चाहती हूँ आज मैं/बच्चों और स्त्रियों के सवाल/क्या मानव अधिकार के सवाल नहीं?/बच्चों की मुस्कान/औरत की एक का स्वाभिमान/ क्या उनका मानव अधिकार नहीं"[5]

'मेरा हक' शीर्षक कविता में मानव मुक्तिके संघर्ष तथा आजादी की बात कवयित्री कहती हैं। समानता की लड़ाई पर वे बल देती हैं। बाल अधिकार में बच्चों के असंख्य अधिकार हैं। संविधान प्रदत्त अधिकारों से बच्चे वंचित हैं ।अज हर कहीं बाल रोजगारी, बलात्कार आदि के समाचार सुनते हैं। कितनी बालिकाएँ रोज उत्पीड़न के शिकार होती जाती हैं। बलात्कारी घूम रहा शीर्षक कविता में रजनी तिलक ऐसे बाल अधिकार हनन को प्रकाश में लाती हैं। अखबार में एवं मीडिया में रोज ऐसे समाचार हम सुनते रहते हैं। बलात्कारियों के लिए बालिग- नाबालिग का फर्क नहीं। उनमें पाशविकता जाग गई है। कविता की पंक्तियां चौंकाने वाली हैं- "रोंगटे खड़े हो जाते हैं/ अबोध शिशु के बलात्कार से/पर वह खुले घूमते हैं/ गली -गली गाँव और शहर में"[6]

डॉ.जयंती माकडिया ने लिखा है , "रजनी बेन की कविताएँ दलित स्त्री की अस्मिता की झलक देती हैं।वे अपने संघर्षों का विस्तार मानवाधिकार आंदोलन, स्त्री मुक्ति, समाज बदलने की प्रक्रिया को तेज करती हैं। जातिवाद-उपजातिवाद, पितृसत्ता और हिन्दुत्व का प्रखर विरोध करते हुए विश्वशांति के लिए बुद्ध की राह चुनने का संदेश देती है।"[7] स्त्री समानता एवं अस्मिता बोध की दृष्टि से अपने अधिकारों के प्रति सचेत करने वाली कविताएँ हैं। रजनी की 'करोड़ोंपदचाप हैं', 'औरत औरत में अंतर है', 'खेला जाता है', 'नाचीज' आदि। एक व्यक्तिके रूप में स्त्री को अपना अधिकार पूर्णरूप से प्राप्त नहीं होता। उसे बहुत कुछ झेलना पड़ता है। औरत होने की वजह से सारी पीडाओं को मन में लिए जीना पड़ता। बचपन में ही बलात्कार, दहेज के नाम पर मार डालना आदी आम बात हो गई है। यहाँ मानव अधिकार कहां सुरक्षित है? खेला जाता है कविता ध्यान देने योग्य है-"सीताओं को/ आज भी स्टोव से जलाया जाता है मासूम कलियों को खिलने से पहले / बचपन में ही लूटा जाता है/कोमल मधुर मुस्कान को / वासना की आग में सींचा जाता है/रामायण हो महाभारत हो/या आधुनिक भारत/हर समय स्त्री के जज्बात से खेला जाता है"[8]

स्त्री मुक्ति की मशाल हो महत्वपूर्ण कविता है। इसमें सावित्रीबाई फुले को क्रांति सूर्य के रूप में कवयित्री देखती हैं। उनके अदम्य साहस से युग के मनु भी हिल गये, घबराये गये। वर्तमान युग के मनु स्त्रियों को बंदी बनाते हैं और अपमानित करते हैं। स्त्री को भोग्या बनाने की परंपरा पर सावित्री ने प्रहार किया। रजनी तिलक सावित्री फुले के जीवन को महिला जीवन के लिए एक कसौटी मानती। क्योंकि उन्होंने पहली बार लडकियों केलिए शिक्षा का रास्ता खोला है। स्त्री मुक्तिएवं विद्रोह की यह कविता गंभीर चिंतन की माँग करती है । पंक्तियाँ देखिए- "आज / इस आधुनिक युग में/जब गर्भ में ही कन्या वध होता है / वहाँ से बच जाए तो/दहेज की आग में / ससुराल में उसका होम होता है/नारी इस युग की त्रासदी है / पतित संस्कृति की गुलाम है/सुष्मिता सेन और ऐश्वर्या / वो बन रही हैं/पूँजीवादी मकडजाल का खिलौना"[9]

स्त्री की यातनाओं और वेदनाओं में काफी समानता हैं।वे लिंग की वजह से दबाई और सताई जाती है। स्त्री वर्ग एक ही प्रसव पीडा हर कहीं झेलती। औरत के दुख-सुख एक जैसा ही है। हमारी संस्कृति में लगभग सारी औरतें सर्वहारा बन जाती हैं। 'औरत औरत में अंतर है' कविता में यही भाव उभर आता है। भूख और अपमान से पीडित होना आत्मसम्मान के लिए तडपना आम बात हो गई है। 'बुद्ध चाहिए युद्ध नहीं' कविता द्वारा युद्ध विरोध प्रकट करके मानवाधिकारों की सुरक्षा की भावना को बरकरार रखा है। जयप्रकाश कर्दम के शब्दों में, रजनी की कविताएँ यथार्थ में बंधन से मुक्ति का आह्वान हैं, जिनमें अतीत के प्रति आक्रोश, वर्तमान के प्रति असंतोष और भविष्य के प्रति आशा का संचार है।"[10]

सुशीला टाकभौरे ने 'स्वाति बूंद और खारे मोती', 'यह तुम भी जानो', 'तुमने उसे कब पहचाना' आदि काव्य संग्रहों में अपनी स्त्री यातनाओं का अध्याय खोला है। साथ ही अपना आक्रोश एवं विद्रोह भी व्यक्त

किया है। सरजू प्रसाद मिश्र ने सुशीला के बारे में बताया है "नारी के 'ज्वालामुखी रूप ' की ओर संकेत कर कवयित्री ने क्रांति के संकेत दिये हैं।"[11]

सवाल यह उठता कि संविधान प्रदत्त समानता का अधिकार स्त्री को कहाँ प्राप्त होता है। लिखित अधिकारों के बावजूद भी असलियत क्या है। सुशीला टाकभौरे ने लिखा है वैदिक काल से आज तक नारी को कभी अधिक और कभी कम अधिकार मिलते रहे रहे हैं मगर वे सभी हमेशा 'नारी धर्म ' द्वारा मर्यादित रखे गये। आज भी नारी को जीवन के हर क्षेत्र में कई अधिकार प्राप्त है मगर वह मुक्तरूप से उन अधिकारों को उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। कहीं अज्ञानता का अंधकार है तो कहीं अशिक्षा की बेड़ियाँ कहीं आर्थिक स्वावलंबन की कमी है तो कहीं पूर्णतः सक्षम शिक्षित स्वावलंबी होने के बाद भी, मानसिक आधार पर पुरुष सत्ता के प्रति अधीनता का भाव है। इस तरह सर्व सामान्य नारी कभी भी स्वयं को मुक्तव स्वाधीन महसूस नहीं कर पाती है।"[12]

'गाली', 'स्त्री', 'जानकी जान गयी है', 'प्रशंसनीय नारी', 'मासूम भोली लड़की, 'औरत नहीं मजबूर', 'आज की खुद्दार औरत','वह मर्द की तरह जी सकेगी', 'विद्रोहिणी' आदि सुशीला की स्त्री विषयक महत्वपूर्ण एवं सशक्त कविताएँ हैं। स्त्री स्वत्व की तलाश जारी है। अधिकार वंचित स्त्री का स्वर विद्रोहिणी कविता में प्राप्त होता है। माँ-बाप ने गूंगा पैदा किया था और परिवेश में लंगड़ा भी बना दिया। बैसाखी के सहारे कितने पड़ाव आए यही कवयित्री का सवाल है। अब प्रचलित परिपाटी से हटकर वह भागती है। विद्रोह की चीख निकलती है। जैसे स्वतंत्रता पर वे बोलती हैं- मुझे आनंद असीम दिगंत चाहिए-"छत का खुला आसमान नहीं / आसमान की खुली छत चाहिए/मुझे अनंत आसमान चाहिए"[13]

असीम स्वतंत्रता भाव यहाँ स्पष्ट है। इसलिए वे पहचानती हैं, कूपमंडूक बनकर जीना भी क्या जीना है। कवि आश्वासन देती हैं शोषित नारी आज जाग चुकी है। और सारे बंधनों को काटकर आगे बढ़ती है। जागरूक नारी दुनिया को बदल सकेगी। रूढ़ी मुक्त स्त्री की परिकल्पना वे करती हैं। सुशीला जी प्रशंसनीय नारी कविता में बताती हैं- "आओ बहनो आगे बढ़ कर/पाए हम अपने अधिकार/देखो कोई रोक न पाए /बढ़ते कदमों की रफ्तार"[14]

सदियों का संताप मिटने वाला है। अब दलित समुदाय अपने अधिकार पहचानने लगा है। 'स्वयं को पहचानो' में सुशीला यही आह्वान देती हैं कि दलितों में अपार निष्ठा है, संघर्ष की शक्ति है। अब संगठित होकर आगे बढ़ना है। मनुष्य के रूप में जीने के लिए यह आवश्यक है। आत्म निरीक्षण का समय आ गया है। अब अज्ञान का अंधेरा नहीं रहेगा। अस्पृश्य भाव को छोड़कर कर्मठ मन से आगे बढ़ने पर मानवता विरोधी करतूतों के शिकार वे नहीं बन जाएंगे।

संक्षेप में कह सकते हैं कि हमारे मौलिक अधिकारों में समानता, स्वतंत्रता के अलावा शोषण से मुक्ति, धर्म की स्वतंत्रता, सांस्कृतिक व शैक्षक अधिकार आदि कई महत्वपूर्ण बातें आती हैं।दलित कविता में इन सब का स्वर सुनाई देता है। सुशीला टाकभौरे और रजनी तिलक ने अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्री की युगों से होती हुई पीडा को वाणी दी है। अपने अनुभव के आधार पर जागृति का शंखनाद बजाने का आह्वान वे दोनों करती हैं। शोषण से मुक्ति के साथ-साथ समाज की मुख्यधारा में आने का भी आह्वान करती हैं। वास्तव में दोनों की कविताओं में जागृति का स्वर है, क्रांति का आह्वान है, अन्याय के खिलाफ आक्रोश है, परिवर्तन का आग्रह है, समानता एवं सर्वोपरि मानवतावादी चिंतन है।सौहार्द एवं भाईचारे को बरकरार रखने का संदेश है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. डॉ.एन.सिंह - दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली, सं. 2016, पृ.23
2. रजनी तिलक - पदचाप, निधि बुक्स, पटना, प्र.सं.2008, पृ. XI, 3. वही ,पृ.8
4. मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान-मानवाधिकार : एक परिचय,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2009, पृ.24
5. वही, पृ.22, 6. वही , पृ.27, 7. वही पृ.62
8. वही पृ.43, 9. वही, पृ.2, 10. वही,पृ.62
11. सुशीला टाकभौरे - यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली,प्र.सं.1994- 95, पृ.8
12. वही पृ.16 , 13. वही, पृ.86, 14. वही,पृ.69

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष , हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय, केरल 673635

बाज़ारवाद और तकनीक के दौर में हिंदी समाचारपत्र

डॉ.रजनीश कुमार मिश्रा

समाचारपत्र मुख्यतः खबरों का एक मुद्रित रूप है। जिसकी शुरुआत प्रिंटिंग तकनीक की शुरुआत के साथ मानी जाती है । सन् 1447 में यूरोप में प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार ने एक साथ कई प्रतियों के निर्माण को संभव बना दिया, आगे चलकर जॉन गुटेनबर्ग के इसी मार्बल प्रिंटिंग प्रेस ने भविष्य की प्रिंटिंग तकनीक के लिए मार्ग प्रशस्त किया। कुछ पुस्तकों के मुद्रण के बाद सन् 1605 में जर्मन में छपे समाचारपत्र Relation aller Furnemmen und gedenckw ürdigen Historien (Account of all distinguished and commemorable news) से समाचारपत्रों की शुरु आत हुई। और इसके बाद विश्व की विभिन्न भाषाओं में समाचारपत्रों के प्रकाशन का सिलसिला आरंभ हुआ।

किसी भी भारतीय भाषा का प्रथम मुद्रण तमिल भाषा (रोमन लिपि) में 1551 ई में लिसिबन में हुआ था । भारत में प्रिंटिंग प्रेस 5 सितम्बर 1556 को गोवा में पहुँचा और प्रथम मुद्रित पुस्तक का प्रकाशन 1557 और 1558 के बीच गोवा में ही हुआ था जिसकी भाषा पुर्तगाली थी। इसके बाद धार्मिक प्रचार के लिए मुद्रण का विस्तार भारत के अन्य जगहों पर हुआ । बंगाल में प्रथम प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा वर्ष 1778 में की गई और 1789 में कलकत्ता से भारत का प्रथम समाचारपत्र बंगाल गजट प्रकाशित हुआ जो साप्ताहिक था, जिसके संपादक जेम्स आगस्टस हिक्की थे। इसी तरह का एक प्रयास ब्रिटिश पत्रकार विलियम बोल्ट ने पहले-पहल किया था जिसे ब्रिटिश सरकार ने भारत से इंग्लैंड वापस भेज दिया था, लेकिन इससे भारतीय पत्रकारिता हतोत्साहित होने की जगह प्रोत्साहित हुई। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रथम प्रयास पं. जुगल किशोर के द्वारा किया गया, इनके संपादन में हिंदी का प्रथम समाचारपत्र उदन्त मार्तण्ड कलकत्ता से 29 मई 1826 ई. को प्रकाशित हुआ । यह एक साप्ताहिक समाचारपत्र था जो प्रत्येक बुधवार को प्रकाशित होता था। लेकिन राजनीतिक और आर्थिक कारणों से यह पत्र दिसंबर, 1827 ई में बंद हो गया। हिंदी का प्रथम दैनिक समाचार पत्र होने का गौरव श्यामसुंदर सेन के संपादकत्व में 1854 में कलकत्ता से प्रकाशित समाचारपत्र समाचार सुधावर्षण को है, यह समाचारपत्र द्विभाषीय था तथा हिंदी और बांग्ला में प्रकाशित होता था जो 1871 तक प्रकाशित होता रहा। जिस समय यह समाचारपत्र प्रकाशित हुआ उस समय हिंदी समाचार के प्रति लोगों की जिज्ञासा बढ़ रही थी, उदन्त मार्तण्ड, के बाद बनारस अख़बार 1845, मालवा अख़बार 1849, बुद्धि प्रकाश 1852, आदि जैसे समाचारपत्र प्रकाशित हो चुके थे। इसी समय भारतेंदु हरिश्चंद्र (कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र पत्रिका, बाला बोधिनी) और उसके बाद बालकृष्ण भट्ट (हिन्दी प्रदीप) जैसे प्रमुख लेखकों ने हिंदी भाषा के लिए कई मानक रचने का काम किया। जो उनके हिंदी पत्रकारिता के विकास में अहम योगदान को प्रमाणित करता है। बाद में महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रिका सरस्वती (1903) ने हिंदी भाषा एवं पत्र पत्रिकाओं की वर्तनी के सुधार एवं एक व्याकरण के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज (1920) जैसे समाचारपत्र देश में राजनीतिक जागरू कता एवं चेतना के निर्माण के प्रयास में संलग्न थे । इस समय तक प्रकाशित अधिकतर पत्र पत्रिकाएँ मासिक या साप्ताहिक होती थीं तथा सूचना एवं समाचारों से अधिक विचारों की वाहक थीं। लेकिन आगे स्थिति बदली जिससे राजनीतिक जागरूकता, राष्ट्रीय आंदोलन एवं दूसरे विश्वयुद्ध के कारण उत्पन्न वैश्विक स्थिति ने लोगों में समाचार प्राप्त करने की उत्सुकता को बढ़ा दिया जिससे दैनिक समाचारपत्रों के प्रकाशन को बल मिला।

अस्सी एवं नब्बे के दशक के आसपास मीडिया में व्यापक परिवर्तन और विकास देखने को मिला। रॉबिन जेफ्री ने अपनी पुस्तक इंडियन न्यूजपेपर रिवोल्यूशन में इस बदलाव के पाँच कारण बताएँ हैं जिसके अनुसार जहाँ तकनीकी विकास ने समाचारपत्रों के उत्पादन और वितरण में वृद्धि की वहीं साक्षरता

और लोगों की क्रय क्षमता के विकास एवं सामाजिक राजनीतिक जागरूकता ने इस वृद्धि को और गति प्रदान की।

पहुँच एवं प्रसार

भारत में समाचारपत्रों के पंजीयन का अधिकार सरकारी संस्था Registrar of Newspapers for India (भारत के समाचार-पत्र पंजीयक) को है जिसकी स्थापना प्रथम प्रेस कमीशन 1953 की सिफारिशों को आधार बनाकर एवं प्रेस और पुस्तक पंजीकरण अधिनियम 1867 को संशोधित करके वर्ष 1956 में की गई थी । आर.एन.आई प्रतिवर्ष भारत से प्रकाशित होने वाले सभी समाचारपत्रों से संबंधित आंकड़े जारी करता है। यह आंकड़े वर्ष 2002 के बाद वार्षिक से बदल कर वित्तीय वर्ष के रूप में जारी किये जाते हैं जिसके आधार पर समाचारपत्रों के विकास को समझा जा सकता है।

Registrar of Newspapers for India (भारत के समाचार-पत्र पंजीयक) ने समाचारपत्रों के संबंध में जो परिभाषा दी है उसके अनुसार "Any printed periodical work containing public news or comments on public news. (However, for study purpose the word 'publication has been used for all printed periodicals irrespective of periodicity)" समाचारपत्रों की श्रेणी में आते हैं। वर्ष 2014-2015 में प्रकाशित RNI की रिपोर्ट के अनुसार कुल रजिस्टर्ड पब्लिकेशन्स की संख्या 1,05,443 थी जिसमें पंजीकृत समाचारपत्रों की संख्या (दैनिक/साप्ताहिक) 14,984 थी एवं अन्य पंजीकृत प्रकाशनों की संख्या 90,459 है। लेकिन ऐसा नहीं है कि ये प्रकाशित समाचारपत्र बहुत आसानी से यहाँ तक पहुंचे हों । कानूनों के कड़े प्रावधान, महंगे प्रिंट पेपर, संसाधनों की कमी आदि कारणों से आज़ादी के प्रारंभिक दशक में इनकी संख्या कम थी। वर्ष 1961 में पंजीकृत दैनिक समाचारपत्रों की संख्या 484 थी जो वर्ष 1971 में बढ़कर 821 हो गई अर्थात 337 नए समाचारपत्रों की शुरुआत हुई। अगले दशक यानी वर्ष 1971 से 1981 के बीच इस संख्या में और इजाफ़ा हुआ एवं 352 नए दैनिक समाचारपत्रों का आरंभ हुआ ।यह वही समय है जिसके बीच में बांग्लादेश की आज़ादी के लिए युद्ध, भारत में इमरजेंसी और पहली गैर कांग्रेसी केंद्रीय सरकार का उदय हुआ। इन सब घटनाओं का असर जनता पर व्यापक था जिसे वह ज्यादा से ज्यादा जानना चाहती थी, लेकिन समाचार प्राप्ति के स्त्रोत कम थे। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए नए समाचारपत्रों के प्रकाशन में वृद्धि होने लगी । यह वृद्धि तब और तेज हो गई जब साक्षरता दर में वृद्धि के साथ एक छोटे ही सही नए पाठक वर्ग का उदय हुआ। छपाई तकनीक में सुधार एवं यातायात के संसाधनों के जिला मुख्यालयों तक की पहुँच ने समाचारपत्रों को नए पाठक वर्ग के और नजदीक पहुँचा दिया। जिसका असर अगले दशक यानी 1981- 1991 के बीच स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस दशक में दैनिक समाचारपत्रों की संख्या में तेज उछाल देखने को मिला और 1683 नये दैनिक समाचारपत्रों का आरम्भ हुआ एवं इसकी संख्या 1981 के 1173 पंजीकृत दैनिक समाचारपत्रों से बढ़कर 2856 तक पहुँच गई।

वर्ष 1991 में भारत सरकार के द्वारा अपनाई गई उदारीकरण की नीति ने समाचारपत्रों को प्रसार का एक और मौका प्रदान किया। यह वृद्धि पहले की तुलना में अधिक तेज थी। उदारीकरण के बाद के क्रमशः दो दशकों (1991-2001 एवं 2001-2011) में 2508 और 5544 नये दैनिक समाचारपत्रों का आरम्भ हुआ। वर्ष 2011-2012 में इसकी संख्या 10908 दैनिक समाचारपत्र तक जा पहुँची।

बढ़ी हुई दैनिक समाचारपत्रों की संख्या के साथ साथ दैनिक समाचारपत्रों की प्रसार संख्या में भी तेज वृद्धि दर्ज की गई । विशेषकर भारत में उदारीकरण के बाद। 1991 में जहाँ दैनिक समाचारपत्रों की प्रसार संख्या 2 करोड़ 42 लाख थी वहीं वर्ष 2001 में यह बढ़कर 5 करोड़ 78 लाख तक जा पहुँची, अगले दशक यानी 2011-12 में दैनिक समाचारपत्रों की संख्या 13 करोड़ 91 लाख बढ़कर 19 करोड़ 69 लाख पर पहुँच गई ।

उदारीकरण के समय हो रही इस तेज वृद्धि के बारे में बताते हुए सेवंती नयनन लिखती हैं कि साक्षरता दर में वृद्धि, संचार माध्यमों की बेहतर व्यवस्था एवं ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि आदि

कारणों से भारत में अब प्रिंट मीडिया (समाचारपत्र एवं पत्रिका) आबादी के हर पाँचवें व्यक्तितक अपनी पहुँच रखता है: '...Two hundred million readers for dailies and magazines magnet that the print media was now available to one out of five people in the country.as a result of the increased literacy, improved communication and rising rural incomes, as well as aggressive marketing strategies adopted by publishers, newspaper penetration in the Hindi belt in increased"

जब समाचारपत्र लगभग हर पांचवें व्यक्ति तक अपनी पहुँच रखने लगा, तब इसका मतलब स्पष्ट था कि इसकी पहुँच एवं प्रसार भारत के भाषायी क्षेत्रों में बढ़ा था, क्योंकि भारत में विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न भाषाओं के समझने एवं पढ़ने वाले लोग रहते हैं। भाषायी समाचारपत्रों के इस विकास में रॉबिन जेफ्री भाषायी मुद्रण को एक प्रमुख कारक मानते हैं वे लिखते हैं कि : "1980 के दशक में भारतीय भाषा में निकलने वाले अनेक अख़बारों की छपाई प्रणाली में बदलाव आया जिसकी अगुआई मराठी के प्रतिष्ठित समाचारपत्र सकाल टाइम्स ने की..... अप्रैल 1984 में सकाल ने ऑफसेट प्रेस लगाया और लिनोटाइप कम्पनी द्वारा निर्मित देवनागरी लिपि के दो फोटो कम्पोजिंग टर्मिनल लगाए।....1989 के आसपास पर्सनल कंप्यूटर ने सारी प्रक्रिया ही बदल दी। अब जिला मुख्यालय में बैठा संवाददाता अपने पर्सनल कंप्यूटर पर देवनागरी लिपि में लिखी खबर लिखकर टेलीफोन मॉडम द्वारा उसे पुणे भेज सकता था और यह खबर उपसंपादक के कंप्यूटर में पहुँच जाती थी जिसे वह कंप्यूटर पर ही संपादित और नियोजित कर लेता था कर सकता था।

कम्प्यूटर में भारतीय भाषाओं के विकास एवं उदारीकरण के बाद हुए तकनीकी बदलाव ने भाषाई समाचारपत्रों के प्रसार एवं पाठक संख्या के साथ साथ उसके महत्व में हुई वृद्धि में भी विशेष योगदान दिया।

हिंदी दैनिक समाचारपत्र पत्रों की संख्या अन्य सभी भाषाई समाचारपत्रों की तुलना में कहीं ज्यादा बढ़ी क्योंकि हिंदी का विस्तार अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में भौगोलिक एवं सांख्यिकीय दोनों ही दृष्टियों से अधिक था। 1979 में जब पहली बार हिंदी समाचारपत्रों की बिक्री अंग्रेजी की तुलना में अधिक हुई थी तब से लेकर अब तक तकनीक और बाज़ार के रथ में सवार हिंदी लगातार वृद्धि की ओर अग्रसर है और भारत में हिंदी भाषा के समाचारपत्रों की संख्या अंग्रेजी एवं अन्य भारतीय भाषाओं से कहीं अधिक है। वर्ष 2011-12 के आर.एन.आई के आंकड़ों के अनुसार रजिस्टर्ड दैनिक हिंदी समाचारपत्रों की संख्या (5114) थी जो अन्य भाषा उर्दू (1167) अंग्रेजी (1004) तेलुगु (876) एवं मराठी (821) के मुकाबले कहीं अधिक है। वर्ष 2014-15 में पंजीकृत हिंदी समाचारपत्रों की संख्या 2011-2012 के 5114 के मुकाबले बढ़कर 6297 तक पहुँच गई है।

पंजीकृत संख्या एवं प्रसार संख्या के अलावा हिंदी समाचारपत्रों की स्थिति पाठक संख्या के अनुसार भी बेहतर है, जो इसे बाजारीकृत व्यवस्था में और भी महत्वपूर्ण बना देती है। हिंदी दैनिक समाचारपत्रों की पहुँच, प्रसार एवं पाठक संख्या में हो रही इस वृद्धि में जिन दो घटकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई वे हैं बाज़ार और सूचना प्रौद्योगिकी। जहाँ बाज़ार ने समाचारपत्रों को और प्रतिस्पर्धात्मक बनाया वहीं 'सूचना प्रौद्योगिकी' ने समाचारपत्रों के हर पुराने मॉडल में परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया ।

संदर्भ

1. Paul Martin Lester, Digital Innovations for Mass Communications: Engaging the User, (2014) pg. 3, Routledge New York
2. Press in India (2014-15), Registrar of Newspapers for India, 59th Annual Report, pg. no ix
3. Sevanti Ninan, Headlines from the Heartland: Reinventing the Hindi Public Sphere, (2007) pg.15, Sage Publications Pvt. Ltd, New Delhi
4. रॉबिन जेफ्री, भारत की समाचारपत्र क्रांति पूंजीवाद, राजनीति और भारतीय भाषाई प्रेस 1977-99, (2004) पृष्ठ संख्या 39 भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली
5. रॉबिन जेफ्री, भारत की समाचारपत्र क्रांति पूंजीवाद, राजनीति और भारतीय भाषाई प्रेस 1977-99, (2004) पृष्ठ संख्या 34 भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

सहायक प्राध्यापक
भाषाविज्ञान और साहित्यिक अध्ययन संकाय
चिन्मय विश्वविद्यापीठ, एरनाकुलम

संजीव के उपन्यासों में आदिवासी जीवन की आर्थिक समस्याएँ

अंजना.ए.एस

आदिवासियों ने अपनी संस्कृति की वजह से अन्य जातियों की तुलना में अलग सी पहचान बनाई है। उनकी संस्कृति ही उनकी पहचान है। अज्ञानता एवं अंध विश्वास की खाई में डूबे होने के कारण अनेक समस्याओं ने उनके समाज में अपनी जड़ें गहरी कर दी हैं। वे लोग अनेक आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त हो गये हैं। आदिवासियों का जीवन संघर्षमय बन गया है। कथाकार संजीव ने आदिवासी जीवन को माध्यम बनाकर अनेक उपन्यासों की रचना की है। आदिवासियों के साथ पल-पल क्या हो रहा है, उसका यथार्थ चित्रण संजीव जी ने अपने उपन्यासों में व्यक्त किया है।

आदिवासी समाज जंगलों तथा पहाड़ों में रहती है, जिसके पास न रहने के लिए घर है और न दो वक्त की रोटी मिलती है। आदिवासी समाज को आने-जाने में भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आदिवासियों का जीवन संघर्षमय बन गया है। प्राथमिक सुविधाओं के लिए वह तरसता नज़र आता है। दिन-प्रतिदिन उनकी स्थिति दयनीय होती जा रही है। इसलिए वह गरीबी का शिकार बन गया है। संजीव जी 'धार' उपन्यास में अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करनेवाले आदिवासी समाज का चित्रण किया है। मेहनत करने के बाद भी जीवन में परिवर्तन आता नहीं है। उपन्यास की नायिका मैना भी अभावों में अपना जीवन व्यतीत करती रहती है। खदानों में काम निपटाकर घर आती है तो उनको खाना भी ठीक से मिलता नहीं हैं। भर पेट भोजन के लिए भी उनको संघर्ष करना पड़ रहा है। मैना के घर में अनाज भी नहीं था। उनके पास थोड़ी ज़मीन थी, किंतु महेन्दर बाबु ने छल-कपट करके उस ज़मीन छीन ली थी। मज़दूरी के अलावा उनके पास दूसरा रास्ता नहीं था। काम करके जो पैसा मिलता तो उनमें ही खाना बनता था। पैसा नहीं मिलता तो उनके घर में चूल्हा जलाने में भी मैना को संघर्ष करना पड़ता है। गरीबी के कारण अपने बच्चों को शिक्षा से दूर रखकर अपने साथ खदान में काम करने के लिए उनको जोड देती है। अपना जीवन चलाने के लिए खदानों से कोयला चुराकर लाती है। कोयला बेचने के लिए मैना अपने परिवार के साथ निकल पड़ती है। कभी-कभी उनको बच्चों को भूखा ही सीना पड़ता था। ऐसी हालत का चित्रण करते हुए लेखक बताते है कि, "सस्ता और इफरात ढूँढ़ने के क्रम में वे कई दूकानों से भिखमंगों की तरह दुरदुराए गए। शाम हो गई, तब जाकर भर पाए उनके शीले, आटा, मीठा और थोड़ा महीन चावल के अलग-अलग पैकट, सस्ती किस्म की दाल, नमक, मसाला, बची-खुकी आधी सड़ी सब्जियाँ।" केवल मैना की नहीं समस्त संभालों की दयनीय स्थिति थी। सेठ-साहूकार, दलाल ठेकेदार, ज़मींदार आदि संथाल जनजाति को अपना शिकार बना देते है। वे लोग उनका शोषण करने में लग जाते हैं। इसलिए संथालों की आर्थिक स्थिति में बदलाव आता नहीं है।

'धार'उपन्यास में गरीबी के कारण मैना और उसका परिवार कोयल बेचने लगता है लेकिन उससे उनकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो पाता। फिर भी मैना हार नहीं मानती। गाँव की कुछ युवा लड़कियाँ गलत रास्ता चुनकर आर्थिक स्थिति में बदलाव लाना चाहती हैं। मैना के बेटे भी ट्रेन में गीत गाते हुए भीख माँगने लगते हैं, उसकी बेटी सितवा भी अन्य लड़कियों की तरह गलत काम करने पर मजबूर हो जाती है। जब मैना यह दृश्य देखती है तब वह बौखला जाती है, वह सोचती है-तो इसका मतलब यह हुआ कि आसनसोल, लक्ष्मीपुर की तरह यहाँ भी रात को चकला चलने लगा।

इस कथन से विदित होता है कि आदिवासियों की कुछ जवान लड़कियाँ अपना शरीर बेचकर पैसा कमाती हैं। वे जंगल में रहते हैं और वहाँ थोड़ी सी ज़मीन में खेतीबाड़ी करके जीविकोपार्जन का कार्य करते हैं। यह भी नहीं होता तो वे अपनी जीविका के लिए ज़मींदार व ठेकदारों के यहाँ बंधुआ मज़दूर बनकर रह जाते हैं। इस उपन्यास में आदिवासियों की आर्थिक स्थिति का चित्रण लेखक ने किया है। वे आर्थिक अभाव के कारण दयनीय जीवन बिताते हैं। इस उपन्यास के पात्रों में बिसराम की आर्थिक दुर्दशा को सामने रखा जाता है। पैसा न होने के कारण उसके घर में परिवार के लिए पर्याप्त खाना भी नहीं बन पाता है। भात के माँड में नमक डाल वह पी लेता हैं। उसकी पत्नी के बीमार पड़ने पर उसके पास इलाज कराने के पैसे नहीं रह पाते हैं। दवा के नाम पर नीम-तुलसी गुड़ का काढ़ दिया जाता है।

संजीव ने 'पाँव तले की दूप' उपन्यास में आदिवासी जनजातियों के जीवन पर प्रकाश डाला है। बाघामुंडी के आदिवासियों के जीवन का परिचय प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा मिलता है। उनको खाने, पीने और कपड़े पहनने का विकल्प नहीं रहता। अपनी इस स्थिति को अपनी तकदीर मानकर ये लोग जीते हैं। उपन्यास का प्रमुख पात्र है फिलिप। आदिवासी समाज की दयनीय आर्थिक स्थिति का बखान करते हुए आदिवासी युवक फिलिप प्रश्न करता है कि हम आदिवासियों की आर्थिक स्थिति ऐसी क्यों है? जबकि सारा जंगल और उनकी अनोखी संपत्ति हमारी है, लेकिन हमारी स्थिति क्यों नहीं बदली? अपने विचारों को संजीव ने फिलिप द्वारा व्यक्त करने की कोशिश की है। "यहाँ धरती हमारी सोना उगलती है और उस सोने की धरती की हम कंगाल संतान हैं। प्रदेश की दो तिहाई आए हमसे होती है और हमारी हालत न तन पर साबूत कपड़ा, न पेट में भरपेट भात। दवा-दारू, पढ़ाई-लिखाई की बात छोड़ ही दीजिए।" यहाँ आदिवासी समाज की गिरी स्थिति स्पष्ट है। मेहनत करने पर भी सुख की रोटी वे नहीं खा पाते हैं। उनकी आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

बाघामुंडी के आदिवासी की दयनीय स्थिति का विवरण देते हुए वे कहते है – "वे इतने गरीब थे कि कपड़ों के नाम पर चिथडे का कच्छा पहने हुए थे, पट्टे तक खुले हुए। औरतें वैसे ही बदन किए हुए थीं। बदहाल कंगाजों जैसे।" प्रस्तुत कथन से विदित होता कि आदिवासियों की आर्थिक स्थिति कितनी दयनीय है और वे कैसे अपने आपको जीवित रखने का प्रयास करते हैं। कथानायक सुदीप्त आदिवासियों के पक्षधर हैं। वे इनकी दयनीय स्थिति को सुधारना चाहते हैं।

'सावधान ! नीचे आग है' उपन्यास में मज़दूरी करते आदिवासी कोदिखाये गया है। ज़मीनहीन होने के नाते वे कठिनाइयों में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे खदानों में काम करने के लिए विवश हो जाते है। जब कोई व्यक्ति खदानों के खिलाफ आंदोलन करता है तो आदिवासियों का जीवन संकट में आ जाता है। जब अपने परिवार में कोई व्यक्ति बीमार होता है तो वह इलाज करवाने के लिए तांत्रिक एवं ओझाओं के पास जाते है। इसलिए कई बार व्यक्ति की मौत भी हो जाती है। गरीबी के बारे में 'सावधान ! नीचे आग है' उपन्यास में संजीव जी बताते हैं कि, "चोट लगे तो पेशाब कर दो-टेटनस से बचे खातिर। एक-दो हल्दी, प्याज़, चना, मदार-धतूरा यही इलाज है हमारा।"

'फाँस' उपन्यास में गरीबी का वर्णन है। उपन्यास का नायक शीबू का परिवार अभावों में ही जीवन यापन करता है। उनके पास एक-दो एकड़ ज़मीन थी, लेकिन उनमें अच्छे से फसल होती नहीं है। उनकी पत्नी शकुन भी जंगल में जाकर चीज़-वस्तुएँ बटोर कर आती थी। बाद में मिली वस्तुओं को बेचकर घर की सामग्री लाने में योगदान देती थी। रहने के लिए भी एक अच्छा आवास नहीं था। परिवार को चलाने के लिए कड़ी मेहनत करता रहता है। उनका दांपत्य जीवन तनावग्रस्त हो जाता है।

शीबू के बारे में संजीव बताते हैं कि,"शिबू के इस छोटे के घर में भी चार छोटे-छोटे घर है, सामने वाले घर में माँ-बाप सोते हैं, उसके ओ पशुशाला। कभी आबाद रहा करती थी भैंस-गाय से। अब सिर्फ एक हत्या है। दूसरा हत्या तुकाराम का लेना पड़ता है जोड़ी बनाने के लिए।"

'जंगल जहाँ शुरु होता है' संजीव का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है। आदिवासियों पर कानून और डाकू किस तरह से शोषण और अत्याचार करते है उसका व्यक्त चित्रण उपन्यास में है। पुलिस व्यवस्था और प्रशासन के लिए प्रस्तुत उपन्यास एक प्रश्न चिह्न है। उपन्यास का नायक काली है जो डाकुओं के संघर्ष में आकर वह भी डाकू बन जाता है। उनके भाई बिसराम था। बिसराम का जीवन अंधकारमय बन गया था, क्योंकि उन्हें भी दो वक्त का खाना मिलता नहीं था। उनके पास कोई बीमार हो जाती है तो इलाज के लिए भी पैसा नहीं है। खाने के लिए भी उनके पास कुछ भी नहीं है तो उपचार के बारे में हम सोच भी सकते नहीं है। सभी शाउ जनजाति की स्थिति ऐसी ही है। साहूकार, ठेकेदार, सेठ, नेता, पुलिस अफसर, डाकू आदि मिलकर इन आदिवासियों का शोषण करने में लगे हुए हैं। अन्याय, अत्याचार एवं शोषण से वे लोग ग्रस्त हो जाते हैं।

आदिवासियों का जीवन तनावग्रस्त बन गया है। वह अपने भविष्य के बारे में सोचते नहीं क्योंकि वर्तमान में ही उनकी स्थिति दयनीय है। आर्थिक अभावों के कारण आदिवासी समाज का सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन संघर्षमय बन गया है।

आदिवासियों की ज़मीन जबरन छीनी जा रही है। ज़मीन उनका जीवन का आधार है। विवश होकर अपनी सारी ज़मीन आदिवासी सत्ताधारी लोगों को सौंप देते हैं। भर पेट भोजन मिलना भी आदिवासी को मुश्किल हो जाता है। कह सकते हैं कि संसार में आदिवासी समाज को जीने के लिए रोटी, कपडा और मकान के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। उनकी हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। जन्म से लेकर मृत्यु तक आदिवासी समाज अभावों से अपना जीवनयापन करते हैं। कड़ी मेहनत करने से भी वे अपनी आर्थिक स्थिति को नहीं सुधार सके हैं। गरीबी के कारण उनके बच्चों का भविष्य भी अंधकारमय बनने लगा है। अन्य लोग भी उनका शोषण करने में लगे हुए हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आदिवासियों का जीवन अनेक आर्थिक समस्याओं से युक्त है। इसका व्यक्त चित्रण संजीव के उपन्यासों में मिलता है।

सहायक ग्रंथ सूची

1. फाँस, संजीव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2015
2. जंगल जहाँ शुरु होता है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली, प्र.सं. 2010, दूसरी आवृत्ति 2015
3. धार, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.प्रथम संस्करण, 2018
4. सावधान ! नीचे आग है, संजीव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, प्र.सं. 1986, तीसरा सं. 2018
5. संजीव के उपन्यासों में आदिवासी जीवन की समस्याएँ, डॉ. किरणसिंह बारैया, माया प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2022
6. आदिवासी विकास से विस्थापन, सं. रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, प्र.सं. 2008, पाँचवाँ सं. 2018
7. आदिवासी समाज एवं संस्कृति, ले. शीला चव्हाण,कदम, रोशनी पब्लिकेशन्स, जवाहर नगर, कानपुर, प्र.सं. 2014
8. पाँव तले की दूब, संजीव, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्र.सं. 2005

शोध छात्रा,
एम.जी. कॉलेज,
केरल विश्वविद्यालय,
तिरुवनन्तपुरम।

'नौकर की कमीज़' उपन्यास में व्यक्त निम्न-मध्य वर्गीय जीवन

अंजना प्रसाद.एस

विनोद कुमार शुक्ल आठवें दशक के उपन्यासकार हैं। वह कविता के क्षेत्र में ही पहले पदार्पण किया, इसके बाद ही उपन्यास, कहानी आदि क्षेत्रों में अपनी मौलिक रचनाओं के माध्यम से एक अलग पहचान बनाई है। वे अपनी संवेदनाओं को पूरी तरह मानव मन में प्रतिष्ठित करने के लिए ही उपन्यास लिखना शुरू किया। अपने उपन्यास में निम्न-मध्यवर्ग को ही हमेशा उन्होंने रखा है। इसका मूल कारण अपने ही शब्दों में यों है "मेरी ज़िन्दगी इनके नज़दीक लगती थी। मैं इनके नज़दीक लगता था। मेरी भावना उन जैसे होती थी, इसके पीछे बचपन और बचपन के अनुभव ज़्यादा कारण हैं। बहुत साधारण-सी ज़िन्दगी बीती जिसमें बहुत साधारण-सी घटना होती गई, असाधारण नहीं।"[1]

विनोद कुमार शुक्ल का पहला उपन्यास है नौकर की कमीज़ (1979)। प्रस्तुत शीर्षक ही एक व्यवस्था का प्रतीक है। इस उपन्यास के माध्यम से समाज में व्याप्त जमाखोरी, काला-बाज़ारी, आर्थिक अभाव, महँगाई, गरीबी, वर्ग-भेद, निम्न-मध्यवर्गीय जीवन, शोषक-शोषित वर्ग आदि का खुला चित्रण किया है।

नौकर की कमीज़ "उपन्यास का मुख्य पात्र संतू बाबू है । वह एक सरकारी दफ्तर में क्लर्क है। यह सारी कथानक संतू बाबू एवं उनके परिवार के ईद-गर्द घटित है। संतू बाबू एक निम्न-मध्यवर्गीय परिवार का सदस्य है। वे अपनी माँ एवं पत्नी के साथ एक किराये के मकान में रहते हैं। वह अपने ज़िन्दगी में कई तकलीफें झेलते हैं लेकिन किसी के विरुद्ध आवाज़ न उठाकर अपने अभावग्रस्त ज़िन्दगी में खुशी का अवसर को ही तलाशता है। उनका कहना है कि मेरा वेतन एक कटघरा था जिसे तोड़ने मेरे बस में नहीं था। यह कटघरा मुझमें कमीज़ की तरह फिट था।"[2] यह उनकी आर्थिक स्थिति को दर्शाता है। एक सरकारी दफ्तर में क्लर्क होने के नाते भी उनके ज़रूरतों की पूर्ती करने केलिए आवश्यक पैसा उनके पास बचता नहीं है। इस वेतन से ही वे हर महीने किराये मकान का पैसा देते हैं, घर की गृहस्थी के लिए चीज़ें खरीदते हैं आदि। इसके बीच कोई बीमारी आते तो इस केलिए खर्च करने की पैसा भी उनके पास नहीं है। यह ही उनकी आर्थिक अस्थिरता।

निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति ऐसा है जो अपने रोज़मर्रा की ज़िन्दगी का खर्च चलाना भी कठिन है। संतू बाबू का वेतन इसका उदाहरण है। उन्होंने जिस किराये मकान में रहता है उसका खर्च महीने पचास रुपया है। इसके बारे में वह कहता है कि - जिस मकान में मैं रहने आया था उसका मालिक शहर का बड़ा डॉक्टर था। मैं पचास रुपया महीना मकान का किराया देता था जो मकान को देखते हुए अधिक था"।[3] उस मकान में बरसात के दिनों में रहना मुश्किल है क्योंकि इसका छत टपकती है। यह घर की समस्या को संतू बाबू डॉक्टर के पास कहता है लेकिन वह इस हालत को सुधारने केलिए तैयार नहीं है। संतू बाबू ऐसा आम आदमी है जो अपने अभावों के बीच भी परिवार के साथ रहता है। वह अपनी पत्नी से कहता है कि- "अच्छा हुआ हम दोनों पति-पत्नी हैं। बस एक चारपाई की जगह बच गई है जहाँ हम पानी से बचे रहकर रात-भर आराम से सो सकेंगे। अगर माँ होतीं तो इस चारपाई पर वे सो जातीं और हम लोग क्या कोने में खड़े-खड़े बात करते ऊँघते हुए रात बिता देते?"[4] प्रस्तुत कथन से किराये मकान का चित्रण मिलता है।

आर्थिक अभाव से जूझने के कारण संतू बाबू के घर में गृहस्थी चलाना भी बहुत मुश्किल है। हर चीज़ का दाम दिन-ब-दिन बढ़ती रहती है। उनकी आमदनी अपने रोज़मर्रा के खर्च चलाने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस अवसर पर संतू की माँ कहती है कि "मैं सब्जी नहीं खाती । बहू तेरा जूठा खाती है। तुमसे बच जाएगा तो खाएगी । कितनी महंगी सब्जी है।"[5] संतू बाबू के परिवार की स्थिति इस तरह बनी हुई है कि उसको घर में खाने के लिए अच्छी चीज़ें भी नहीं ला सकते हैं। वे इस आर्थिक अभाव के कारण गुप्ता जी के दूकान से सामान उधारी लेते हैं। परिवार को अच्छी तरह से संभालने के लिए उन्हें अपना आत्म सम्मान को गिरवी रखना पड़ता है। "अपनी दूकान से घूरते हुए गुप्ता ने मुझे देखा । चूँकि मैं गुप्ता जी की दूकान से उधारी सामान लाता है। इसलिए उनका देखना मुझे घूरने जैसा लगता था "[6]। कम वेतन में घर के सारी ज़िम्मेदारी निभाना उनके लिए कठिन है।

संतू बाबू के मन में यह सपना है कि अपनी पत्नी

के लिए साड़ी-ब्लाऊज़ खरीदना लेकिन यह भी पूरा नहीं होता है। पत्नी के मन में भी यही इच्छा है लेकिन वह भी अपने परिवेश से अवगत होकर चुप रहती है। नौकरीपेशा निम्न-मध्यवर्गीय लोगों की दशा ऐसा होती है कि उन्हें महीने के अंतिम पाँच-छः दिन में अर्थाभाव से गज़रना पड़ता है। जब संतू बाबू बीमार होता है तो उनका कथन है कि - 'यदि मैं बीमार हुआ तो मैं यहाँ नहीं आऊँगा । इनकी फीस बहुत ज़्यादा है। बीस रुपए फीस देकर मैं इलाज नहीं करवा सकता । मैं सरकारी अस्पताल जाता हूँ। सरकार जो सुविधा देती है, उसका उपयोग करना चाहिए"[7]। संतू बाबू के किराये घर का मालिकिन डॉक्टर साहब है । जब संतू बीमार होता तो वह डॉक्टर साहब के पास जाने इनकार करता है । यह भी उनकी अर्थाभाव की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। यह सभी निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति है। ऐसा कठिनाई में जीवन बिताना सीखना और हर तकलीफों को दबाकर आगे जीना उनकी नियति है।

निम्न-मध्यवर्गीय परिवार के लोगों को उच्च वर्ग अपने गुलाम मानते हैं। यहाँ दफ्तर के साहब, डॉक्टर साहब आदि उच्च वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं। वे आम आदमी का शोषण करते हैं। डॉक्टर साहब अधिक फीस वसूल कर बीमार लोगों का शोषण करते हैं और बीमारी बढ़ते तो उन्हें किसी सरकारी अस्पताल जाने के लिए कहते हैं। इस तरह डॉक्टर साहब की पत्नी संतू बाबू की पत्नी को घर का काम करने के लिए बुलाती है। उन्होंने संतू बाबू की पत्नी को बिना मज़दूरी दिये घर की नौकरानी बनाती है। उस घर में खाना बनने का भी अलग तरीका है। "बंगला में खाना दो तरह का बनना था । डॉक्टर और डॉक्टरानी केलिए अलग खाना बनना था, उसकी विधवा बहन अपने और भतीजे के लिए अलग खाना बनती थी। जब दूसरे नाते रिश्तेदार आते थे तो इन्हीं के साथ उनके लिए भी खाना बन जाता था"[8]। इस तरह ऊँच-नीच भाव ही इस उच्चवर्गीय परिवार के सदस्यों के मन में है।

संतू बाबू को दफ्तर में ही शोषण का शिकार बनने पड़ता है। बड़े बाबू होना नौकर की कमीज़ को जबरदस्ती संतू बाबू को पहनाने की कोशिश की है। यह उस बुरी व्यवस्था का खुला चित्रण है कि एक कमीज़ नौकर के लिए बनती है और जिसको यह कमीज़ फिट हो जाती है वह अगले दिन से साहब के नौकर बन जाता है। "बड़े बाबू ने और मज़बूती से मेरा हाथ पकड़ लिया। मुझे तिल्ली के तेल की गंध आई। महँगू के तेल से चुपड़ा सिर मेरे पास आ गया था । यद्यपि वह मेरे पीछे खड़ा था पर मैं जानता था कि थोड़ी ही हिलूँगी तो यह सोचकर कि मैं भगाने वाला हूँ । वह मुझे पूरी ताकत से जकड़े लेगा"।[9] यहाँ संतू बाबू को दफ्तर के काम के साथ साहब के घर का काम भी करना पड़ता है। यह भी शोषण का एक अन्य रूप है। निम्न-मध्यवर्गीय परिवारवालों को अनेक तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है । इन सभी शोषण को जानबूझकर ही वे अपने जीवन बिताते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में महँगू, संपत, महावीर जैसे प्रात्र भी निम्न -मध्यवर्ग की कोटि में आते हैं। उनके जीवन में जो कष्ट है वह सहज एवं मार्मिक रूप में यहाँ अभिव्यक्त है। महँगू दफ्तर के साहब का नौकर है। उनका हालत ऐसा है कि - "महँगू दस-दस दिन लगातार अपने घर नहीं जा सकता था"[10]। इसका कारण यह है कि साहब के घर का सारा काम पूरा करके महँगू को घर जाना हो तो उसका काम कभी खत्म नहीं होता है। यहाँ उच्चवर्ग द्वारा निम्न-वर्ग का शोषण ही दृष्टव्य है।

संपत भी एक निम्न-मध्यवर्गीय परिवार के सदस्य है। उनकी आर्थिक स्थिति भी बहुत खराब है। वह एक महाविद्यालय के रसायन शास्त्र की प्रयोगशाला में काम करता है। उसका वेतन बहुत कम है। वह अतिरिक्त आमदनी के लिए रेड़ियो स्कूल में भर्ती हो जाती है । वहाँ उन्हें ठीक तरह की शिक्षा न मिलती है। इससे वे निराश है। वहाँ भी उन्हें शोषण का शिकार बनना पड़ता है।

निष्कर्षतःयह कहा जा सकता है कि "नौकर की कमीज़' उपन्यास का संपूर्ण कथानक निम्न-मध्यवर्गीय जीवन और उसके भीतर पैदा होनेवाले संघर्षों का दस्तावेज़ है। इसमें आम आदमी कीआशा आकांक्षा, निराशा, बेरोज़गारी, परस्पर संबंध, कुंठाएँ, पीड़ा, घुटन, अनास्था, संत्रास, ऊब आदि का चित्रण बड़ी सहजता के साथ पाठकों के सामने लेखक प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.विनोद कुमार शुक्ल का एक साक्षात्कार, तिथिः 29 नवंबर 2001, स्थानः शुक्लजी का आवास(रायपुर, छत्तीसगढ़) ।
2.'नौकर की कमीज़', विनाद कुमार शुक्ल, आधार प्रकाशन, 1979, पृ. 15, 3. वही, पृ. 8, 4. वही, पृ. 48
5. वही, पृ. 10, 6. वही, पृ. 16, 7. वही, पृ. 42
8. वही, पृ.43, 9. वही, पृ.112, 10. वही, पृ.35

शोधार्थी, महात्मा गाँधी कॉलेज
तिरुवनंतपुरम, केरल

उदयप्रकाश की कविता में स्त्री

मंजुला.पी.एस

हिंदी कविता के फलक पर उदयप्रकाश एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनकी कविताएँ हमारे सामने व्यापक जीवन संदर्भों को लेकर उपस्थित होती हैं। इसलिए ही उनकी कविताओं में वर्तमान भारतीय समाज के प्रति गहरी संवेदनात्मक लगााव देख सकते हैं। उनकी कविताओं के केन्द्र में जीवन की विषम परिस्थितियों से संघर्ष करनेवाले आम आदमी है। घटती हुई संवेदना के इस दौर में मनुष्यता को बनाये रखने की कोशिश है उदय प्रकाश की कवितायें।

स्त्री जीवन को केन्द्र में रखकर उदयप्रकाश जी ने कई कवितायें लिखी हैं।समकालीन परिवेश में स्त्री की त्रासदी और विडंबना ही इन कविताओं के मूल में हैं। पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री हमेशा दोयम दर्जे का है।वह सामाजिक ,राजनीतिक एवं आर्थिक स्तर पर शोषण का शिकार है। निरंतर संघर्ष के रास्ते से गुजरनेवाली स्त्रीयों की जीवन व्यथा को अपनी कविताओं में वाणी देती है।

घर हो या ससुराल नारी हमेशा परिवारवालों के लिए अपने को समर्पित करती रहती है। परिवार के अंधकार को मिटाने के लिए एक ढिबरी की भांति वह स्वयं जलती रहती है।यानि परिवारवालों की खुशामदी के लिए वह स्वयं मुसीबतें झेलती है। नींव की ईंट हो तुम दीदी नामक कविता में ऐसी एक संघर्षशील नारी का चित्रण है।

ढिबरी थी दीदी तुम/ हमारे बचपन की/अचार का तल
छँट तेल/अपनी कपास की बाती में सोखकर
जलती रही/हमने सीखे थे पहले-पहल अक्षर/और
अनुभवों से भरे किस्से/तुम्हारे उजली
साँस के स्पर्श में।[1]

ढिबरी, पीपल, नदी, चट्टान आदि प्रतीकों के माध्यम से दीदी की विशिष्टता की अभिव्यक्ति है साथ ही साथ एक संघर्षशील नारी चरित्र का उद्घाटन भी । अपने जीवन रूपी कपास की बाती में सोखकर जलने के लिए विवश नारी सारा तेल सोख लेने के बाद भी जलती रहती है।

तकलीफों के धागों से जीवन के एक छोर को दूसरे छोर तक जोडने के लिए प्रयास करनेवाली औरत तपस्या नामक कविता के केन्द्र में है। अपने घर परिवार का निर्वाह करने के लिए वह रात दिन कपडे सिलती रहती है। आँखें गडाकर, सिर झुकाकर अपने काम में वह इतना तल्लीन है कि कवि को लगता है मानो वह तपस्या कर रही हो। सच्चाई यह है कि वह अपने श्रम से घर को जोडने की तपस्या कर रही है। कवि कहते है-

"वह टाँक रही है/किवाडों के टूटते कब्जे/ सिल रही है/छप्पर के फूटे खपरैल/ बिखरती मुंडेर/ ठीक जगह पर/बिठा रही है मयार बडेरी/पैबंद लगाा रही है/चिराते दीवालों पर/रफ कर रही है/बच्चे की बीमारी/ जोड रही है/पति की छूटती टूटती नौकरी/ थगली लगा रही है/पति के अपमान और/अपने पीठ के घावों पर" [2]

कविता इस बात का साक्षी है कि दुनिया बदलती रहती है। पर उनकी तकलीफों का धागा कभी खतम नहीं होता।

स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुवों को उद्घाटित करनेवाली कविता है औरतें। बलात्कार के तुरंत बाद चुपचाप बस में सफर करनेवाली, पति द्वारा प्रताडित होते हुए भी सदैव सुहागन भरने के लिए करवाचौथ का व्रत लेनेवाली, पति या साँस के हाथों मार दिए जाने के डर से नींद में भी चिल्लानेवाली एवं अपनी जैसी ही बेबस किसी दूसरी औरत के घर से लौटनेवाले शराबी पति का इंतजार आधी रात में भी करनेवाली स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति अत्यंत मार्मिक है।

आज स्त्री की बहुत बडी विडंबना यह है कि अपने घर में भी वह असुरक्षित है। कभी कभी पति के डर से घर से भागने के लिए भी वह विवश है। कवि लिखते है-

"औरत अपने पति के डर से भागकर/अजनबी किसी शहर में खोजती है अपना ठिकाना।"[3]

पुरुष सत्तात्मक समाज में पत्नी हमेशा पुरुष का गुलाम है। इस गुलामी को अपना धर्म मानते हुए उनपर होनेवाले अत्याचारों को चुपचाप सहकर पति के साथ रहनेवाली औरत कभी मृत्यु के हाथों में फँस जाती है।

वर्षों तक उन्हीं के खून और उन्हीं के रज से उनको नहलाते हुए/जब किसी एक दिन उन्हें मिट्टी के तेल या पेट्रोल में भिगाया/गया और एक तीली उन्हें दिखाई गई/या तकिये में उन्होंने गुडनाइट या नमस्ते और/अज्ञात फूल काढ रखे थे/वही तकिया उनकी नाक में देर तक दबाया गया।"[4]

सब कुछ सहने के बाद भी वह स्वयं को दोषी ठहराती है। अपने मृत्यु पूर्व बयान में अपनों को बचाने के लिए झूठ बोलनेवाली औरतों की ओर संकेत करके कवि लिखते है-

"अस्पताल में हजार प्रतिशत जली हुई औरत का/ कोयला दर्ज करता है/अपना मृत्यु पूर्व बयान कि उसे नहीं जलाया किसी ने/उसके अलावा बाकी हर कोई है निर्दोष/गलती से उसके ही हाथों फूट गई किस्मत/फट गया स्टोव"[5]

कविता इस बात की गवाही है कि चाहे मध्यवर्गीय परिवार की पढी लिखी कामकाजी औरत हो, चाहे अनपढ हो, गरीब हो या श्रमरत वह किसी न किसी प्रकार के शोषण का शिकार है।

कवि अपनी कविताओं के माध्यम से हमारी शासन व्यवस्था एवं न्याय व्यवस्था का पोल खोलती है। स्त्री सुरक्षा के नाम पर कई योजनायें तो बन गए हैं पर न्याय उसके नसीब में कहाँ? स्त्री हत्या होने पर वर्षों तक मुकदमा चलता रहता है। कवि इसकी ओर इशाारा करते हैं।

"हत्यारे ने उस औरत को मारने में दो मिनट लगाए/ उस पर दो शताब्दियों तक चलता रहा मुकदमा"[6]

कवि कहता है कि समाज में वह इतना असुरक्षित है कि इस दुनिया में जन्म लेने से इनकार करके लडकियाँ गर्भ के अंधेरे में छुपना चाहती है। माँ की कोख में भी लडकियाँ सुरक्षित नहीं हैं तो उनके लिए सुरक्षित स्थान कहाँ? यह चिंतनीय है।

"वहाँ भी खोज लेती है उन्हें भेदिया ध्वनि तरंगें/वहाँ भी,भ्रूण में उतरती है हत्यारी कटारे"[7]

इस सदी में एक लडकी जिससे मैंने प्यार किया था शीर्षक कविता में अपने घर के निर्वाह के

लिए वेश्यावृत्ति करने को विवश नारी का चित्रण है। मजबूरीवश वेश्यावृत्ति करनेवाली औरतों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कवि लिखते हैं-

"उनका माँस ढीला है/और उसमें कई दुख है/जो मर्दों को उत्तेजना देते हैं"[8]

इस पुरुषप्रधान समाज की दृष्टि में स्त्री हमेशा भोग वस्तु मात्र है। वर्तमान उपभोगवादी समाज में इसे बढावा मिल गया है। विज्ञापन और फिल्मों की दुनिया में स्त्री देह मात्र है। वहाँ स्त्री को व्यक्ति का दर्जा प्राप्त नहीं। उनके अस्तित्व को मानता ही नहीं। विज्ञापन की दुनिया स्त्री देह को मुनाफे के रूप में देखते हैं। सफल चुपी नामक कविता में कवि लिखते है-

"सिनेमा हाल की सबसे अगली कतारों पर बैठे हुए/ वे मनोरंजन उद्योग का बाँक्स आफीस तय करते थे/ और जब अस्सी लाख या डेढ करोड की फीस लेकर/ नाचती हुई एक आइटम गेल/हिलाती थी अपने कुल्हे और छातियाँ/तो उनकी सीटियाँ बजती थीं अंधेरे में"[9]

'पंचनामे में जो दर्ज नहीं है' कविता स्त्री चरित्र के दोहरेपन को व्यक्त करता है। वे स्त्रीयाँ जो दिन के उजाले में कितनी खुश होती है रात के अंधेरे में उतनी दुखी भी है।

हमारे सामाजिक व्यवस्था इतना खराब हो गया है कि स्त्री-पुरुष के लिए मनोरंजन का चीज मात्र है। उनके मानसिक व्यापार का नजरअंदाज करते हैं। पुरुष के लिए स्त्री अपने वंश बीज बोने का उर्वर भूमि है। उनके अस्तित्व और अस्मिता के सवाल ही इस पुरुष सत्तात्मक समाज में नहीं उठते। पचास सालों से इस तरह चलती आ रही नागरिकता को वह अपनी मृत आँखों से ही देख पा रही है। समूची नागरिकता वहाँ पचास साल से खोखली है/ स्त्रियाँ निरंतर प्रजनन और प्रसव करती हैं/कमरों के सामने नंगी अधनंगी परेड करती हुई अपनी/फटी मृत आँखों से सभ्यता को देखती है और बिना चीखे/ चुपचाप किसी स्टौव या किसी तंदूर में दाखिल हो जाती है"[10]

अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में किसी न किसी तरह से शोषण का शिकार होनेवाली औरतों के प्रति उजयप्रकाश जी अपनी संवेदना प्रकट करती है। माँ बहनों की इज्जत लूटनेवालों को भी जयजयकार करनेवाली सत्ता पर उन्हें कोई विश्वास नहीं। इसलिए अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखना है। समर्पण की भावना को छोडकर, जंजीरों को तोडकर उन्मुक्त गगन में उडना है। उदयप्रकाश जी की कविताएँ स्त्री को मात्र स्त्री का दर्जा नहीं बल्की मानव का दर्जा देने के लिए प्रयासरत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उदयप्रकाश, अबूतर -कबूतर, पृ-13
2. वही पृ-48
3. उदयप्रकाश, अंबर में अबाबील पृ-88
4. उदयप्रकाश, रात में हारमोनियम पृ-47
5. वही पृ-32
6. वही पृ-49
7. वही पृ-33
8. वही पृ-34
9. उदयप्रकाश, एक भाषा हुआ करती है, पृ-31-32
10. उदयप्रकाश, रात में हारमोनियम पृ-51

असिस्टेंट प्रोफसर, हिंदी विभाग
एन एस एस कालेज,ओट्टपालम

'ज़माने में हम' में चित्रित स्त्री जीवन का यथार्थ

डॉ.लालीमोल वरगीस.पी.

हिंदी की जानी -मानी आलोचक श्रीमती निर्मला जैन की आत्मकथा 'ज़माने में हम' का पहला संस्करण सन् 2015 ई में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से निकला। इसमें लेखिका निर्मला जैन ने अपने जीवन में घटित विविध मधुर और कटु अनुभूतियों को शब्दबद्ध किया है। निर्मला जी ने इसमें अपने जीवनानुभवों के माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों के भी चित्रण किया है । इस आत्मकथा की खासियत यह है कि इसमें आज के अनेक साहित्यिक सामाजिक सन्दर्भ और उनसे जुड़े चित्र उभरे हैं, इसमें हिंदी के अनेक साहित्यकार मूर्त रूप से उपस्थित हैं।

प्रोफेसर निर्मला जैन का जन्म एक प्रतिष्ठित मध्यवर्गीय जैन परिवार में हुआ था। जिस पुरानी हवेली में निर्मलाजी का जन्म हुआ था, उसको देखने के लिए बहत्तर वर्ष बाद वे वहाँ पहुँचती हैं। इसके वर्णन के साथ आत्मकथा की शुरुआत होती है। उनके पिता लाला मीरिमल की हवेली है यह।

आश्चर्य की बात यह है कि अब इस हवेली में रहनेवाले लोग अब भी उसी पारिवारिक बनत में बंधे थे जिसमें लेखिका के परिवार के बच्चों ने होश संभाला था यानी तीन -चार भाईयों का सा परिवार, साझा रसोई। "नीचे ड्योढी के सामने वाले बड़े से कमरे में फर्शी दरी पर बैठी एक प्रौढ महिला हाथ की मशीन पर खटाखट कुछ सिलाई कर रही थीं। वैसे ही जैसे पचहत्तर बरस पहले हमारी माँ किया करती थीं। साडी पहनने का वही ढंग।"[1] उस गाँव में आपात स्थितियों में फैसला और हुकुम दोनों लेखिका के पिताजी के चलते थे। इसलिए अभी भी उनके पिताजी का वजूद कायम है। दादाजी जवाहरात की दुकान के मालिक थे।

उस समय शादी के लिए लड़की का पढ़ा लिखा होना बहुत ज़रूरी नहीं समझा जाता था। निर्मला जी को बचपन से ही नृत्य और संगीत के प्रति बड़ा प्रेम था। बचपन से ही वे संगीत की दुनिया से संबद्ध थी । निर्मला जी को लेकर माँ-बाप की नज़र में एक खास किस्म का चौकन्नापन और सावधानी घर कर गयी थी। घर में निर्मला जी के हमउम्र लड़के ही ज़्यादा थे । खेलकूद में शोर -शराबा ज़्यादा मचता तो डाँट लेखिका को ही सुननी पडती। नृत्य के कार्यक्रमों में जब जाना होता तो भाई के अलावा घर का एक पुराना बुजुर्ग नौकर निर्मलाजी की चौकीदारी के लिए भेजा जाता। इस तरह उनका जीवन भी उस समय के आम परिवारों में होनेवाली पारिवारिक जद्दोजहद से संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ा। निर्मला जी जब BA तब उनकी शादी तय हो गयी थी। उन्होंने अपने पति का द्वितीय एक अच्छे स्नेह संपन्न पुरुष के रूप में चित्रण किया है।

निर्मला जी के मन पर उस समय के सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण की गहरी छाप स्थापित होने लगी थी। उस समय सैर -सपाट के लिए घरेलू महिलाओं को बाहर निकलने का चलन था नहीं। सिवाय मंदिर और नाते -रिश्तेदारों में खुशी -गमी के मौकों पर। निर्मला जी कम नाचने का शौक कॉलेज के कार्यक्रमों और सालाना यूथ फेस्टिवलों में भागीदारी के लिए छात्रों को तैयार करने में एक हद तक पूरा हो जाता था। वाद्य -यन्त्रों में सरोद उनका प्रिय वाद्य रहा और हाज़िम अली खाँ साहब से उन्होंने शिष्यत्व ग्रहण किया था। निर्मलाजी की PhD का परिणाम मिलने पर एक दावत का आयोजन हुआ था और उसके बाद अमजद अली का सरोदवादन भी हुआ था। उनके परिवार से लेखिका का स्नेह सम्बन्ध अनेक वर्षों तक बना रहा।

निर्मला जी कहती है कि विश्वविद्यालय में पढ़ते समय एक बार डॉ. नगेंद्र ने पंतजी के काव्य पाठ का आयोजन किया था। पंत जी ने बड़ी तन्मयता से काव्य पाठ किया था और पहली बार पंतजी को देखने सुनने का सौभाग्य लेखिका को मिली। उनके अनुसार पंतजी वयस्क चोले में प्रच्छन्न सरल बालगोपाल है।

एक बार दूरदर्शन के लिए निर्मला जी ने महादेवी वर्मा पर 20 मिनट की एक छोटी -सी फ़िल्म बनायी थी। वे हमेशा खद्दर की साड़ी पहनती थी। 'उन्होंने जिस बाल- सुलभ चपलता और उत्साह से उसमें सहयोग दिया, वह मेरे लिए बड़ा सुखद और आश्चर्य जनक अनुभव था।"[2]

एक बार विश्वविद्यालय में डॉ.नगेंद्र ने राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त की स्मृति में भाषण कराने की योजना बनायी और महादेवीजी ने अपना भाषण पेश किया था। विश्वविद्यालय के उपकुलपति प्रोफेसर गांगुली ने अपने अध्यक्षीय भाषण में महादेवी जी के सहज भाषण की तुलना 'गंगाजल से गंगा का तर्पण' करने से की थी। लेखिका की राय में 'मैंने जीवन में विभिन्न विषय के बड़े -बड़े विद्वानों को तरह -तरह के विषयों पर बोलते सुना है, पर याद नहीं आता कि भाषण देने का वह ढंग कहीं और देखने को मिला हो"[3] इस प्रकार उनकी आत्मकथा में अनेक साहित्यकार मूर्तरूप से उपस्थित हैं।

1956-1970 तक निर्मलाजी लेडी श्रीराम कॉलेज के हिंदी विभाग के अध्यक्ष पद पर बनी रही। वहाँ उनका जीवन बहुत हँसी -खुशी से बीत गया था। 'हर साल एक नया चेहरा आकर जुड़ जाता था। औरों के अलावा, कई सदस्यों का संबंध हिंदी साहित्य के ख्यातनामा रचनाकारों से था। उनमें क्रमशः उपन्यासकार कृष्णचंद्र शर्मा' भिक्खू की पत्नी शकुंतला शर्मा, कवि भारत भूषण अग्रवाल की पत्नी डॉ. बिंदु अग्रवाल, डॉ. नगेंद्र की छोटी बेटी प्रतिमा, कवि गिरिजा कुमार माथुर की बेटी वीना और मनोहर श्याम जोशी की पत्नी भगवती जैसे तमाम नाम शामिल थे। इनके अलावा कवयित्री इंदु जैन भी आते -आते रह ही गयी थीं। इन सबके विभाग में होने से, अकादमिक दुनिया के बाहर के साहित्यिक परिदृश्य से भी कमोबेश संबंध बना रहता था।"[4]

जब निर्मला जी लेडी श्रीराम कॉलेज की प्रिंसिपल थीं तब उनकी उम्र 28-29 के बीच थी। उसी समय कैंपस के किसी कॉलेज की मीटिंग में लालाजी ने फ़रमाया कि 'कॉलेज कैसे चलाया जाता है, यह देखना हो तो लेडी श्रीराम कॉलेज जाकर देखिए आपलोग। वहाँ एक कितनी कम उम्र की लड़की mob को कैसे control कर रही है।"[5] लेखिका के लिए यह प्रतिक्रिया आशीर्वचन से कम नहीं थी।

निर्मलाजी का व्यक्तित्व साहसी स्पष्टवादी और निडर था। उनके college life में कई ऐसे बहुत से सन्दर्भ पैदा हो गए थे जहाँ forgive and forget वाले गुरु मंत्र को अपनाने के लिए दबाव आये थे खास तौर पर डॉ. सिन्हा और डॉ. साहेब से। लेकिन लेखिका का मानना था कि जो हुआ उसमें उनका कसूर नहीं। इसलिए माँफी नहीं माँगूगी।

एक बार कॉलेज के हिंदी विभाग में नई नियुक्तियों के लिए इंटरव्यू के लिए selection committee में लालाजी ने आतंरिक विशेषज्ञ के रूप में निर्मला जी को शामिल करना चाहा। लेकिन डॉ. नगेंद्र को यह पसंद नहीं था । बैठक की कार्रवाई शुरू होते ही उन्होंने अपनी नाराज़गी, मेरे प्रति उपेक्षा का रवैया अख्तियार करके ज़ाहिर करनी शुरू कर दी। वे बातचीत आरंभ करके, अपने सवाल खत्म करके प्रत्याशी को मेरे अलावा दूसरे सदस्यों की तरफ बढ़ाने लगे।"[6] इस प्रकार निर्मलाजी ने अनुभव किया कि डॉ. नगेंद्र ने उनके साथ पक्षपात किया है ।

लेखिका की तरह छोटी बहन के सामने भी उसके विभागाध्यक्ष ने बाधा खड़ी कर दी थी। इसलिए

उसकी मित्र ने मैसाचुसेट्स यूनिवर्सिटी में उसके दाखिले की व्यवस्था कर दी। जीवन के अंत तक वह अमेरिका में रही। कैंसर से पीड़ित उनकी छोटी बहन की पीड़ा और उनके संघर्ष का विवरण उन्होंने दिया है । उनकी मृत्यु के बाद ही लेखिका और भाभी घर वापस आयी।

लेखिका का पारिवारिक जीवन खुशी के साथ बीता गया। बच्चों को अच्छे स्कूलों में पढ़ाया। उन्हें किसी बात की कमी नहीं महसूस होने दी। निर्मला जी आर्थिक लाभ और पुरस्कार के लिए कभी किसी दरवाज़े पर दस्तक नहीं दी। जो जहाँ से अयाचित और अनायास मिल गया सम्मान और कृतज्ञता भाव से स्वीकार कर लिया।

वर्धा विश्वविद्यालय की चयन समिति में भाग लेने के बाद उनका जीवन, बड़े सुख -चैन से कट गया। विश्वविद्यालय की पूरी प्रक्रिया के दौरान कुलपति और उपकुलपति ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। यह बात लेखिका को बहुत प्रभावित किया। कुलपति विभूति नारायण राय की मित्रता ने लेखिका के आत्मबल को मजबूत किया। अंत में दो विश्वविद्यालयों के विजिटिंग प्रोफेसर की हैसियत से उनको संबद्ध होने का प्रस्ताव भी लेखिका ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

नौकरी से अवकाश प्राप्त होने के बाद गुड़गांव के शांत, निर्जन सुरम्य -से इलाके में लेखिका ने अपना मकान बना लिया था। लेकिन अभी वह इलाका मिलेनियम सिटी के रूप में बदल गया है। वहाँ के लोगों की मानसिकता के बारे में लेखिका कहती है 'रह-रहकर सुनाई पड़ता है कि परिचितों में कोई और जुड़ गया गुडगांव की किसी कॉलोनी में । सब सुनते हैं एक- दूसरे के बारे में लेकिन कोई हिम्मत नहीं करता संपर्क कायम करने की। क्या हमारी संवेदनायें इस तरह शुष्क बन गई हैं कि अपने आस-पास के अनेकानेक मनुष्यों के बारे में जानने और संपर्क कायम करने की हिम्मत नहीं करते हैं ।.... आज के भाग दौड़ भरी जिंदगी में जिंदगी की लय उसका छंद ही बदल रहा है। बदलाव का असर पीढ़ियों, वर्गों जातियों के अंतर से कैसे पड़ेगा यह कहा नहीं जा सकता। क्या यह संभव है कि अंततः सब हमवार हो जाए - ब्रांडधर्मी निरवैयक्तिक?"[7]

निर्मला जी ने अपनी आत्मकथा में एक साहित्यकार अध्यापिका और गृहिणी के रूप में अनेक अनुभवों को शब्दबद्ध किया है। कामकाजी नारी जीवन की विविध समस्याओं को लेकर उनकी चिंता एवं उद्विग्नता के दर्शन हमें मिलते हैं। इसमें उनके जीवन के यथार्थ का अंकन किया गया है। उनकी भाषा सहज, संप्रेषणीय और प्रभावकारी है। इसमें जीवंतता है। 'ज़माने में हम' की एक प्रमुख विशेषता लेखिका अपने समय के साहित्यकारों को लिखी चिट्ठीयाँ हैं। इनमें मैथिली शरणगुप्त, विष्णुकांत शास्त्री, नामवर सिंह, महादेवी वर्मा, उषा प्रियंवदा, राजेंद्र यादव आदि प्रमुख हैं। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि 'ज़माने में हम'में लेखिका के जीवन के यथार्थ का अंकन किया गया जिसमें लेखिका के पारिवारिक जीवन, विश्वविद्यालय जीवन, और साहित्यकर्मियों के जीवन के यथार्थ बिंदुओं पर विश्लेषण किया गया है। निस्संदेह, निर्मला जैन की आत्मकथा 'ज़माने में हम' हिंदी की अमूल्य निधि है।

सन्दर्भ ग्रंथः

1 निर्मला जैन 'ज़माने में हम' पृ.14
2 वही पृ.102
3 वही पृ.102
4 वही पृ.128
5 वही पृ.122
6 वही पृ.122
7 पृ.336

असोसियेट प्रोफसर, राजीव गाँधी मेमोरियल सरकारी आर्ट्स & साइन्स कॉलेज, कोट्टात्तरा

क्या मधुमेह जीवनशैली से जुड़ी बीमारी है?

डॉ.सौम्या.एम.सी

मधुमेह और मधुमेह की जटिलताएं समकालीन समाज के लिए दो परिचित शब्द हैं। इस लेख के साथ मधुमेह से जुड़ी कुछ बातें साझा की जा रही हैं।

मधुमेह क्या है?

एक स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में औसत ग्लूकोस स्तर 140 mg/dl होता है। जिस स्थिति में ग्लूकोस का स्तर इससे ऊपर होता है उसे मधुमेह कहते हैं। मधुमेह मुख्यतः दो प्रकार का होता है।

टाइप 1 मधुमेह :- इसमें अग्नाशय ग्रंथि हार्मोन इंसुलिन का उत्पादन नहीं कर रही है या यह कम मात्रा में उत्पन्न होता है। इंसुलिन हार्मोन का कार्य रक्त में ग्लूकोस को ग्लाइकोजन में परिवर्तित करना है। लेकिन जब अग्नाशय ग्रंथि इंसुलिन का उत्पादन बंद कर देती है तो रक्त में ग्लूकोस का स्तर बढ़ जाता है इसको टाइप 1 मधुमेह कहते हैं।

टाइप 2 मधुमेहः- इसमें शरीर रक्त के ग्लूकोस को ठीक से संसाधित नहीं कर पाता है। इसमें इंसुलिन का उत्पादन नहीं कर रहा है या शरीर हार्मोन इंसुलिन का विरोध कर रहा है।

मधुमेह का निदान कैसे करें?

मधुमेह के अधिकांश रोगियों में कोई लक्षण नहीं होता है। लेकिन कुछ लोगों को अधिक प्यास लगना, थकना, झुकना, कम दिखाई देना, बार बार पेशाब आना आदि लक्षणों का अनुभव होगा। आमतौर पर मधुमेह की पहचान तब की जाती है जब इस प्रकार के लक्षण अनुभव होते हैं या जब नियमित रक्त परीक्षण किया जाता है।

खून की जांच खाली पेट और खाना खाने के 2 घंटे बाद करनी चाहिएऋ इन्हें क्रमशः फास्टिंग ब्लड शुगर (FBS) और पोस्ट प्रांडियल ब्लड शुगर (PPBS) के रूप में जाना जाता है। HbA1c के नाम से जाने वाला एक रक्त परीक्षण भी है जिसमें तीन महीने की औसत ब्लड शुगर की गणना की जाती है।

मधुमेह का इलाज

अन्य बीमारियों के अलावा मधुमेह एक ऐसी बीमारी है जिसमें दवाओं के साथ-साथ जीवनशैली में बदलाव की भी जरूरत होती है। पहले यह पता लगाना आवश्यक है कि मधुमेह के रोगी को मधुमेह की कोई जटिलता तो नहीं है। उपचार की पहली पंक्ति में जीवनशैली में बदलाव के साथ कम असर वाली दवाएं दी जाएगी। इसके साथ ही कोई जटिलताएं की हो उस केलिए भी उपचार लिया जाना चाहिए। ब्लड शुगर के स्तर का आकलन करने के लिए हर महीने रक्त जांच की जानी चाहिए।

यदि इस प्रकार के उपचारों से मधुमेह नियंत्रित नहीं होता है तो बढ़ी हुई दवाएं दी जाएगी। इससे भी मधुमेह नियंत्रित नहीं होता है तो इंसुलिन का इंजेक्शन लगवाना जरूरी है। इंसुलिन का इंजेक्शन खुद या किसी अन्य व्यक्ति की मदद से लिया जा सकता है।

आयुर्वेद में मधुमेह

आयुर्वेद की प्राचीन पुस्तकों में मधुमेह के बारे में विस्तार से उल्लेख किया गया है। आयुर्वेद में अनुचित भोजन और आहार संबंधी आदतें मधुमेह के कारण के रूप में वर्णित किया गया है। अर्थात मीठे, नमक और खट्टे स्वाद का अधिक प्रयोग तथा भारी खाद्य पदार्थों जैसे दूध, मांस आदि का अधिक प्रयोग, बिना व्यायाम किए रहने की आदत और अनुचित नींद की आदतें आदि मधुमेह का कारण हैं।

आयुर्वेद में मधुमेह और इसकी जटिलताओं के प्रबंधन के लिए विस्तृत उपचार विधियों का वर्णन किया गया है। अवैज्ञानिक उपचार पद्धतियों के बजाय डॉक्टर के निर्देशों का पालन करते हुए वैज्ञानिक उपचार करना बेहतर होगा।

हाइपोग्लाइसीमिया

डायबिटीज का इलाज करानेवाले हर व्यक्ति को इस स्थिति के बारे में पता होना चाहिए। इसमें रक्त का ग्लूकोस स्तर अचानक नीचे गिर जाता है। पूरे शरीर से पसीना आना और ठंड लगना, भूख, धडकन, भ्रम आदि हाइपोग्लाइसीमिया के लक्षण हैं। यदि इनमें से कोई भी लक्षण अनुभव हो तो अचानक 15 ग्राम चीनी का सेवन करना चाहिए। मीठे फल और कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन भी ले सकते हैं। ब्लड ग्लूकोस के स्तर का आकलन 15 मिनट के बाद किया जा सकता है। यदि इसे नहीं उठाया जाता है तो तत्काल चिकित्सा परामर्श लेना चाहिए।

ब्लड ग्लूकोस के स्तर में वृद्धि की तुलना में हाइपोग्लाइसीमिया एक खतरनाक स्थिति है। इसलिए हर एक मधुमेह रोगी को इस स्थिति के बारे में पता होना चाहिए।

मधुमेह और जीवनशैली

मधुमेह को जीवनशैली रोग के उपनाम से जाना जाता है। मधुमेह के इलाज के लिए आयुर्वेद और एलोपथिक दोनों प्रणालियों द्वारा जीवनशैली में संशोधन की सलाह दी जाती है।

सबसे पहले चीनी और मीठी चीजों से परहेज करना चाहिए। साथ ही तैलीय (Oily) और तली भूनी (Fried) चीजों से भी बचना चाहिए। मधुमेह रोगी को शराब और तंबाकू के उत्पादों से भी बचना चाहिए।

मधुमेह रोगी अधिक फाइबर सामग्री वाले खाद्य पदार्थों का उपयोग करना चाहिए। अधिक फलियां, पत्तेदार सब्जियां, सेब, कम पके केले आदि का उपयोग कर सकते हैं। मधुमेह केवल दवाइयों के साथ जीवनशैली में परिवर्तन द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

आधुनिक जीवनशैली और फास्ट फूड की संस्कृति मधुमेह जैसी कई बीमारियों का कारण बन रही है। इसलिए बीमारियों को रोकने के लिए उचित खान-पान और व्यायाम का पालन करना चाहिए। हम इसी तरह एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं।

अनुसंधान अधिकारी (आयु.)
क्षेत्रीय आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान
पूजपुरा, तिरुवनंतपुरम

धर्मस्थल उपन्यास में राजनीतिक चेतना

अश्वती.ए.डी

मानव समाज परंपरागत विचारधाराओं का गुलाम नहीं, बल्कि वह नवीन विचारों का सृजन भी करता है और इस बदलते विचारों से राजनीतिक मानदंड प्रभावित हुए है। स्वतंत्रता से पूर्व राजनेताओं में देशभक्ति एवं जनसेवा की भावना कूट -कूट कर भरी हुई थीं, लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सेवा, त्याग एवं समस्त मानवीय मूल्य नेताओं केलिए निरर्थक हो गये। स्वतंत्र भारत के नेता अपने पद की सुरक्षा और अपने लिए अधिकाधिक धन एकत्र करने की चिन्ता में राजनीतिक उधेड़ बुन में व्यस्त हैं । इस प्रकार राजनीति पूर्णतः भ्रष्ट हो गयी हैं, और तत्कालीन उपन्यासों में इस भ्रष्ट राजनीतिक स्थिति पर कुठराघात किया गया है। "राजनैतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टचार, स्वार्थपरता, भाई - भतीजावाद, जातिवाद, प्रतिवाद जैसे फोड़े सारे राष्ट्र के शरीर में एकाएक फूट पड़े और चारों ओर मवाद, सड़ते मांस और गंदे खून की महक भर गयी ।" (1) चारों ओर राजनेताओं में नैतिक पतन दिखाई दे रहा है । संसदीय लोकतंत्र का भव्य दृश्य प्रस्तुत करता हुआ यह भारत व्यवहार में जनतंत्र नहीं बन पाया है । शासन में जनना की हिस्सेदारी नहीं, यहाँ तक कि सरकारी नीतियाँ भी जनता के वास्तविक हितों को दृष्टि में रखकर नहीं बनाई जाती हैं। इस प्रकार राजनीति भ्रष्ट हो गयी है। अब कोई महात्मा गाँधी का आदर्श शेष नहीं रह गया है। उसके स्थान पर बहती गंगा में हाथ धोने की प्रवृत्ति बढ़ गयी हैं।

भारत ने जो अपना संविधान तैयार किया था, उसमें राजनीतिक और आर्थिक रूप से सबको समान अवसर प्रदान करने की बात कही गयी थी। लेकिन इस संविधान के बनने में देर न हुई कि राजनीतिक चूहों ने उसे कुतरना शुरू कर दिया । पं. जवाहरलाल नेहरू और सरदार बल्लभाई पटेल के समय में ही भीतर ही भीतर षड्यंत्र चल रहे थें और देश के राजनीतिक प्रासाद में दरारें पड़ने लगी थीं। 'गाँधी के नाम की दुहाई देनेवाले राजनीतिक नेताओं की कथनी और करनी में बहुत अंतर आ गया। स्वयं राजनीतिज्ञ खरीदे जाने लगे हैं। राजनीतिक दल और पूँजीपति दोनों ही राजनीतिज्ञों का क्रय-विक्रय करने में जुटे हुए है । दल-बदल सामान्य राजनीति-धर्म हो गया है।"(2) वर्तमान राजनीतिज्ञों में न अब स्वच्छ चरित्र रहा है और न देश के प्रति आस्था ही शेष बची है। राजनीति अब व्यवसाय बन गयी हैं, और देश के लिए एक गंभीर प्रश्न है। वस्तुतः देश के नेताओं ने पारस्परिक फूट, प्रांतीयता, सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, आदि के द्वारा चारों ओर अंधकार फैला दिया है। हिन्दी अंग्रेज़ी भाषा को लेकर दंगे भी राजनीतिज्ञों के कराये हुए हैं। राष्ट्रध्वज और संविधान को फाड़कर उन्होंने हीं जलाया है। नदियों का पानी, बँटवारा, संघर्ष और सांप्रदायिक दंगों में भी इन्हीं राजनीतिज्ञों का हाथ है। मिल मालिकों और मज़दूरों के पारस्परिक झगड़े ये ही भ्रष्ठ राजनीतिज्ञ करवाते हैं। इस प्रकार राजनीतिक मंच पर भ्रष्टाचार पूरी तरह फैला हुआ है। देशवासियों की राजनीतिक चेतना में एक नई गतिशीलता और नया प्रवाह अवश्य आया है। देश पुरानी राजनीतिक लीक से अलग हटने का प्रयास कर रहा है। पंचवर्षीय योजनाओं से देश को एक नई दिशा प्रदान की गयी है। इस प्रकार राजनीतिक परिवर्तन के साथ -साथ विकास कार्य भी हुआ है। राजनीतिक चेतना की धारा को आगे बढ़ाने में इन राजनीतिक परिवर्तनों का विशेष योगदान है ।

प्रियंवद का चौथा उपन्यास है - धर्मस्थल - धर्मस्थल में प्रियंवद ने प्रतीकात्मक रूप में और खुले रूप में भारतीय न्याय व्यवस्था के वक्षस्थल या कत्लखाना होने पर चिंता जतायी है। यह आयतित भारतीय दंड - संहिता, जो साक्ष्यों पर अवलंबित है और हमारे न्यायालयों की संविधान में वर्णित और अदालतों में जारी साक्ष्य की पूरी प्रविधि पर प्रश्न खडा कर देती है। साक्ष्यों का महत्व वहाँ होता है। जहाँ गवाह पढे लिखे और ईमानदार हो । बिकी हुई गवाहियाँ न्याय को अविश्वसनीय बना देती है । धर्मस्थल अपन्यास आज के नज़रिए से प्रासंगिक हैं, कचहरी के भीतर होते घात - प्रतिघात, वकील जज- मुवक्किल आदि की दाँव- पेंच भरी बारीक जानकारियाँ भी प्रियंवद पाठकों को परोसते चलते हैं।

धर्मस्थल उपन्यास में मुख्य रूप से भ्रष्टाचार और न्याय व्यवस्था या कानून को इशारा किया है। भ्रष्टाचार वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्या बनी है। भारत में भ्रष्टाचार और गरीबी प्रचुर मात्रा में पायी जाती है । आज भारत में भ्रष्टाचार की जटिल समस्या हो रही है। राजनीतिक, अधिकारी, पुलिस तथा अन्य लोग भ्रष्टाचार करते हैं। डॉ. रवीद्र घड़िया के अनुसार "सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार सामाजिक हितों पर गंभीर आघात करता है और कानून इसे पूरे समाज को चोट पहुँचाने वाले गंभीर अनैतिक कृत्य के तौर पर अपराध का दर्जा देता है। कानून के अनुपालन और लागू करने में राजनैतिक, नैतिक इच्छाशक्ति के अभाव के कारण शीर्षस्थ नेताओं, मंत्रियों को अनेक अपराधों की सजा मिलना दूर की कौड़ी जान पड़ता है।"(3) वर्तमान समय में सरकारी साधनों का उपयोग मर्यादित लोग करते हैं। अनेक राजनीतिज्ञ, सरकारी अधिकारी, बैंक के संचालक तथा संसद सदस्य अपने स्वार्थ की पूर्ती करते हैं। भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए कोई सशक्त संस्था के अभाव में भ्रष्टाचार ज़रूरी होता है। भ्रष्टाचार विविध प्रकार के है। राजनीति, प्रशासकीय क्षेत्र, सरकारी कार्यालय, पुलिस, न्यायालय, स्थानीय प्रशासन, आर्थिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, धार्मिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार पाया जाता है ।

धर्मस्थल उपन्यास में जहाँ न्याय होता है। उस न्याय मंदिर में ही भ्रष्टाचार के कारण न्याय नहीं मिलता उसे पैसा देकर खरीदना पडता है। "महताब जहाँगीर सीधे जज के चेबर में गए। कुछ देर बाद बाहर निकल आए। केस की सुनवाई शुरू हुई। महताब जहाँगीर ने मालिकों की तरफ से अग्रिम जमानत की अर्जियाँ दीं। मालिकों को जमानत मिल गई।" (4) शासन के वकील एक गुनहगारों को छोड़ने के लिए लाखों रुपये लेते हैं। भ्रष्टाचार के अनेक विविध रूप समाज में दिखाई पडते हैं।

धर्मस्थल उपन्यास का दूसरा मुख्य समस्या अन्याय है। सरकार समाज को नियंत्रण में रखने के लिए कानून तैयार करती है । कानून का उल्लंघन करनेवालों को दंड देने की व्यवस्था होती है। स्वस्थ समाज निर्मिती के लिए न्याय व्यवस्था को महत्व है । समाज में अन्याय अत्याचार रोकने केलिए न्याय व्यवस्था प्रमुख होती है। सामान्य जनता का न्याय व्यवस्था पर विश्वास होने के कारण वह अदालत में जाकर न्याय मांगता है।

धर्मस्थल उपन्यास न्याय और अन्याय को सूचित करती है । "राजा का सबसे बड़ा धर्म है न्याय करना.... इसीलिए यह धर्मस्थल कहलाता है । यहाँ दण्ड देनेवाले, न्याय करने वाले धर्माधिकारी होती है । गलत काम करने वालों को दण्ड दिया और यही वह जगह है जहाँ न्याय होता है।"(5) प्रस्तुत कथन धर्मस्थल या कचहरी के बारे में नायक कमिल का विचार है। धीरे- धीरे यह व्यवस्था बदल जाता है। "चार जज ऐसे थे जिनके चेम्बर में कामिल जब चैहे जा सकता था। धर्मस्थल में सब जानते थे कि उन जजों की अदालत में चलने वाले मुकदमों के फैसले कामिल लिखवाता है। उन मुकदमों से जुड़े दोनों पक्ष कामिल को अपनी तरफ करने की कोशिश करते थे। किस पक्ष का साथ देना है यह कामिल तय करता था।"(6) धर्मस्थल का कानून बदलता और धर्माधिकारी अन्याय में डूब गया । इसमें बदलता हुआ न्यायशास्त्र और समाज शास्त्र दोनों झलकते हैं। धर्म से बड़ा हुआ कामिल धीरे-धीरे अन्याय के मार्ग में चलकर पैसे कमाना शुरू करता है।

निष्कर्ष : मनुष्य का मन लालसा के कारण अधिक भ्रष्ट बनता दिखाई देता है। अति धनपाने की लालसा, उचित वेतन का अभाव, बढ़ती हुई महँगाई, बढ़ती हुई ज़रूरतें, कम परिश्रम में जल्दी धनवान बनने की लालसा, नौकरी पाने के लिए पैसे देना पडता है फिर नौकरी मिलने के बाद जो दिये वह वसूलने का वह भ्रष्टाचार करता है। वर्तमान समाज में यह समस्या सर्वव्यापी है।

देश में न्याय व्यवस्था समाज में शांति तथा सुव्यवस्था प्रस्थापित करने के लिए आवश्यक होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर पृ. 15
2. हिन्दी उपन्यासों में मार्क्सवादी चेतना -डॉ. वीरेन्द्र कुमार, पृ.59
3. ॲड. रविंद्र घड़िया-नैतिकता, कानून और राज्य, पृ. 227
4. धर्मस्थल- प्रियंवद, पृ 35
5. वहीं पृ. 13
6. वहीं पृ.103-104

शोध छात्र, सरकारी वनिता कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

हिंदी महिला आत्मकथा पर एक विहंगम दृष्टि

डॉ.नजुमा.एस.हक्कीम

हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में से जो विधा जीवन की समीक्षा है, वह आत्मकथा है। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में आत्मकथा की यह खासियत है कि वह अकाल्पनिक विधा है। मानव मन की कथा है आत्मकथा कहना अनुचित नहीं। क्योंकि आत्मकथा व्यक्ति के जीवन का, भोगे हुए क्षणों का, झेले हुए सुख-दुखों का सच्चा लेखा-जोखा है।आत्मकथाकार अपने समग्र जीवन का पुनरीक्षण करता है। आत्मकथा में अन्य कथा-साहित्य की तरह सुनिश्चित अंत उपलब्ध नहीं फिर भी इसमें कथा साहित्य की तरह तत्त्व प्राप्त है। कथावस्तु, वैयक्तिकता, परिवेश, भाषा-शैली और उद्देश्य आत्मकथा के प्रमुख तत्तव हैं।

आत्मकथा में व्यक्ति के आन्तरिक और बाहरी जीवन ईमानदारी से पेश होता है।अज्ञेय जी के अनुसार श्रेष्ठ आत्मकथाकार की अपनी आत्मकथा में कुछ दूसरे अत्यन्त दुर्लभ गुण भी होते हैं जो बहुत दूर तक इस अहंमन्यता के प्रभाव को विकास कर देते हैं।[1] आत्मकथाकार राजनीतिक क्रिया-कलाप, धार्मिक-मान्यता, साँस्कृतिक गतिशीलता तथा आर्थिक जीवन चक्र का आकलन पूरी सावधानी से करती है।

आत्मकथा पाश्चात्य साहित्य की देन है। अंग्रेजी में AUTOBIOGRAPHY शब्द का प्रथम प्रयोग सन् 1797 में विलियम टाइलर ने किया था। उनके अनुसार "आत्मकथाकार किसी व्यक्ति के खुद के जीवन का लेखा-जोखा है।"[2] बाद में आज के अर्थ में इसका प्रयोग रॉबर्ट साउथे ने सन् 1803 में किया था। वैसे उन्नीसवीं शताब्दी के शुरुआती दौर में ही आत्मकथा साहित्य की एक विधा के रूप में उभर आयी।

साहित्य के विविध क्षेत्रों में महिलाएँ विशेष भूमिका का निर्वाह कर रही है। यद्यपि बीसवीं सदी के अंतिम दशक में ही हिन्दी साहित्य में महिलाएँ आत्मकथा विधा में प्रवेश करने लगी है, तो भी स्वतंत्रता के पूर्व सन् 1917 में प्रकाशित स्फुरना देवी की आत्मकथा 'अबलाओं का इन्साफ' में इसका प्रारंभ देखा जा सकता है। लेकिन पुरुष के अहं ने इसे दबाकर विलुप्त कर दिया था। पुस्तकाकार में प्रकाशित प्रथम महिला आत्मकथा जानकी देवी बजाज द्वारा लिखित मेरी जीवन यात्रा है।

महिला आत्मकथाएँ महिलाओं के भोगे हुए सुख-दुख, आशा-निराश, हर्ष-विषाद के यथार्थ चित्रण के साथ ही साथ पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में नारी के अनुभवों का दस्तावेज भी है। डॉ. सुमनराजे ने अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास में लिखा है - "आत्मकथा और समीक्षा का क्षेत्र भी सूना ही पडा है। लेकिन अब यह शिकायत दूर होने लगी है । बीसवीं शताब्दी बीतते- बीतते हिन्दी पट्टी की महिलाओं ने अपना मौन तोडा एक के बाद एक महिला आत्मकथाएँ प्रकाशित हो रही हैं।"[3] हिन्दी आत्मकथा साहित्य में महिलाएँ अपनी आत्मकथा के माध्यम से स्त्री विमर्श को प्रस्तुत की हैं। लेखिकाओं ने अपने व्यक्तित्व के साथ-साथ समकालीन जीवन की रचनाओं को भी शब्द- बद्ध किया है। लेखिकाओं में प्रतिभा अग्रवाल, शिवानी, कुसुम अंसल, कृष्णा अगनीहोत्री, रमणिका गुप्ता, पद्मा सचदेव, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, सुनिता जैन, सुशीला टाकभौरे, कौसल्या बैसंत्री, चंद्रकिरण सोनरेक्सा आदि का नाम उल्लेखनीय है। प्रतिभा अग्रवाल कृत 'दस्तक जिन्दगी की', 'मोड जिन्दगी' का हिन्दी साहित्य की महिला आत्मकथाएँ हैं। इसके बाद कुसुम अंसल कृत 'जो कहाँ नहीं गया', कृष्णा अगनीहोत्री कृत 'लगता नहीं है दिल मेरा', कौसल्या बैसंत्री कृत 'दोहरा अभिशाप', मैत्रेयी पुष्पा कृत 'कस्तूरी कुण्डल बसै', 'गुडिया भीतर गुडिया', मन्नू भंडारी कृत 'एक कहानी यह भी', चंद्रकिरण

सोनरेक्सा कृत 'पिजंरे की मैना', प्रभा खेतान कृत 'अन्या से अनन्या', रमणिका गुप्ता कृत 'हादसे' आदि उल्लेखनीय हैं।

इन महिला आत्मकथाओं में सामाजिक, आर्थिक, शौक्षिक, राजनीतिक समाज में स्त्रियों के निजी जीवन की हैसियत का पता चलता है। अपने जीवन आपबीती के साथ समाज राष्ट्र की समस्याओं पर भी आत्मकथा लेखिकाओं ने प्रकाश डाला है। जीवन में घटित समस्याओं की अभिव्यक्ति की है। जो पूरे भारतीय नारी की समस्याओं से जुडी हुई है।

मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी' में उनका परिवार, उनके संपर्क -संबध, तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एंव साहित्यिक समस्याओ का प्रामाणिक चित्रण है। एक स्त्री के जीवन में परिवार का महत्व अनन्य-साधारण होता है। विवाह पर अविश्वास करनेवाले पति अगर किसी स्त्री का पति बन जाता है तो किस प्रकार दाम्पत्य जीवन तहस- नहस हो जाता है इसका अत्यंत ईमानदारी से लेखिका ने चित्रण किया है। राजेंद्र यादव से लगातार ढाई साल की मित्रता के बाद मन्नू ने उनसे शादी की थी। 'खाली स्लेट' की तरह दाम्पत्य जीवन का प्रारम्भ करने का आश्वास देनेवाला पति शादी के बाद 'समान्तर ज़िन्दगी' की अवधारणा की सिलसिला आरम्भ करता है। इस समय एक पढ़ी-लिखी, प्रतिभासंपन्न लेखिका की मानसिकता कैसी रही होगी इसका अंदाजा सुधीजन लगा सकते हैं। इस आत्मकथा में सतही तौर पर स्त्री -विमर्श या स्त्री-पुरुष समानता का ढोल पीटनेवाले राजेंद्र की पोल खोलकर मन्नू ने रख दी है। राजेन्द्र का पहला प्यार मीता थी उसने राजेन्द्र से सीधा सवाल किया -"फिर आपने मन्नू से शादी क्यों की?"(4) इसके उत्तर में राजेंद्र यह कहते हैं, "यह सही है कि प्रेम मेरा उसी से रहा पर घर बसाने के लिए वह ठीक नहीं थी क्योंकि वह बहुत ही दबंग, अक्खड और डॉमिनेटिंग है।"(5) राजेन्द्र इस बात से यही कहना चाहते हैं शायद कि दबंग अकखंड और डॉमिनेटिंग होना पुरुषों का ही अधिकार है।

भारतीय पुरुषसत्तात्मक समाज व्यवस्था में जहाँ स्त्री- पुरुष लिंग भेद किया जाता है, वहाँ लडकियाँ अपने माता- पिता, परिवार से अपनत्व और प्यार के लिए तरसती रहती हैं। सदा ही अपेक्षा और सामाजिक रीति-रिवाज़ों का ताना- बाना सहते हुए बडी होती है। ऐसी ही जीवन जीनेवाली एक लडकी पढ- लिखकर बडी होती है। 'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान संपन्न मारवाडी परिवार में जन्म होने के कारण साधन, सुविधाओं की कोई कमी न थी। कमी थी सिर्फ ममता और प्यार की जो उन्हें जन्मदात्री माँ से कभी न मिला। नौकरानी, दायी माँ ने प्यार दिया। ऐसा बचपन लांघकर जब प्रभा जवान हुई। तब तक पढ- लिखकर उन्होंने दुनिया की अच्छाई- बुराईयों की बहुत सारी बातों को जान समझ लिया था। 'अन्या से अनन्या' मूलतः अपवाद है। उसमें लेखिका ने अपनी अपरिचित जीवन- काल की मूर्खताओं को भी बेबाक तटस्थता के साथ वाणी दी है। स्त्री के साथ तो अलग ही विडम्बना सामने आती है कि वह बचपन से लेकर मृत्यु तक पितृसत्तात्मक समाज के दिशा- निर्देशों का पालन करते रहना पडता है। इसी पितृसत्तात्मक समाज के प्रति अपना आक्रोश बताते हुए प्रभा जी कहती हैं- "मैंने प्रत्यक्ष में डाक्टर साहब से पूछा क्या यही है पढने- निखने का लाभ कि घरवाले चाहे जिस खुंटे से मुझे बांध जाएँ? चुनाव, निर्णय की स्वतंत्रता, प्रतिबद्धता जैसे शब्दों को मैं सुनती आई हूँ, आज मैं स्वयं से पूछना चाहती हूँ- बस क्या यही है स्त्री की नियती?"(6)। सदियों से हम देखते आये हैं कि आज तक अधिकारों पर कब्जा पितृसत्तात्मक समाज का ही रहा है एवं आज भी है और वह तब रहेगा जब तक स्त्रियाँ अपने अधिकारों के लिए जागरूक नहीं हो जातीं।

पुरुषसत्तात्मक समाज में सामाजिक मान्यता के अनुसार स्त्री को हमेशा पुरुष का अनुगामिनी रहना पडता है। वह कहीं सहगामिनी या सहचारी नहीं बन सकती। इस मान्यता का विरोध करते हुए 'बूँद बावडी' में पद्मा जी कहा है "औरत आदमी के साथ सिर्फ दो वक्त की रोटी के लिए ही नहीं रहती, वो सुरक्षा के उस घेरे के लिए भी

रहती है जिसमें सुरक्षा है, अपनापन है और है सम्मान।[7] बूँद बावडी आत्मचेतना के फलस्वरूप खुद पर होनेवाले अन्याय के अंखिन देखा दस्तावेज़ है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में मैत्रेयी पुष्पा अपनी माँ कस्तूरी और मैत्रेयी के बीच के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का वर्णन है। कस्तूरी अकाल वैधव्य के भार से दबकर हार नहीं मानती। ग्रामीण परिवेश के विरोधी नकारात्मक तत्वों से टकराते हुए निंदा और उपहास की चिन्ता न करते हुए शिक्षा की कठिन डगर पर चलते हुए आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करती है। विरोधी तत्त्व उस पर व्यंग्य बाणों की वर्षा करके थक जाते हैं और अन्ततः उसका लोहा मान जाते हैं। समाज से प्राप्त कटु अनुभवों ने उसे पुरुष वर्चस्व का कट्टर विरोधी बना दिया और वैवाहिक बंधन को वह नारी के पैरों की बेडी मान बैठी। इसी कारण वह उनकी बेटी को भी वैवाहिक बंधन से मुक्त रखना चाहती है। तथा उसे आत्मनिर्भर बनाना चाहती है। किन्तु उनकी बेटी मैत्रेयी वैवाहिक जीवन में प्रवेश करना चाहती है। क्योंकि उसके अनुभव के अनुसार उसे लगता है शादी ही उनकी मुक्ति का साधन है। इसलिए वह माँ से कहती है- "माँ तुम खफा क्यों होती है ? मेरी स्वभाविक इच्छा को कठोर उपवास में मत बदलों मैं अपनी इंद्रियों को कसते-कसते दूसरों की हवस का शिकार हुई जाती हूँ।"[8] मगर शादी के बाद आये अनुभवों से मैत्रेयी अपनी माँ को खोजती हैं। माँ से नफरत करने वाली मैत्रेयी अब माँ की याद करने लगती है।

हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार रमणिका गुप्ता अपनी आत्मकथा 'हादसे'में राजनीति में आनेवाली औरतों की मानसिकता स्पष्ट करती है। रमणिका जी कहती है कि "राजनीति में उन दिनों अधिकांश औरतें सामन्ती परिवार से आती थीं। कुछ पिछडे परिवारों की थीं। ये औरतें यौन शोषण का प्रतिरोध नहीं कर पाती थी। बडे परिवारों की औरतों को केवल बडे लोगों को खुश करना होता है। कई मामलों में तो अपने परिवार वालों या पति की देख रेख में वे ऐसा करती हैं। उनके परिवार की सीधी पहुँच उच्च नेताओं तक होती है। पिछडे परिवारों की औरतें छुटभैयों के माध्यम से बडे लोगों के संपर्क में आ जाती हैं। कइयों के पति और पिता भी इसमें साथ देते हैं। वे इन शोषण को ऊपर उठाने की सीढी मानते हैं।"[9] रमणिका जी ने पितृसत्तात्मक समाज में राजनीतिक सच्चाईयों का खुलासा भी आत्मकथा में किया है।

हिन्दी की महिला साहित्यकारों ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से अपने जीवन के अनुभवों को आम जनता के सामने प्रस्तुत किया है। लेखिकाओं ने अपने साहस एवं आत्मविश्वास की शक्ति से जगत में एक नई क्रान्ति ला दी है। उनकी आत्मकथाएँ चिन्तन के स्वानुभव के साथ जुडी हुई है। समाज में शक्तिशाली रूप में प्रभावित करनेवाली महिला आत्मकथा हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

संदर्भ ग्रन्थसूची

1. समकालीन भारतीय साहित्य सितंबर-अक्टूबर 2011 पृ-22
2. www.wikipedia.org self written account of the life of one self -William Tailor
3. सुमनराजे- हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास- पृ-94
4. मन्नू भंडारी- एक कहानी यह भी - -पृ.सं 298
5. मन्नू भंडारी -एक कहानी यह भी - -पृ.सं 298
6. प्रभा खेतान -अन्या से अनन्या - पृ.87
7. पद्मा सचदेव- बूँद बावडी -पृ-235
8. मैत्रेयी पुष्पा -कस्तूरी कुण्डल बसै - पृ.सं 52
9. रमणिका गुप्ता - हादसे- पृ.264

षिबिन मंसिल
एलमानूर.पी.ओ, पत्तनंतिट्टा

मलयालम उपन्यास 'इरुमुटिक्केट्ट' का अनुवाद

दूनी गाँठ की गठरी

मूल : के.एल.पॉल

अनुवादः प्रो. डी. तंकप्पन नायर व अधिवक्ता मधु. बी.

सोपान
पंद्रहवाँ

माँ के कब्र में जाना चाहिए और वहाँ पर मोमबत्ती जलाकर जरा जोर से रोना चाहिए। तभी शांतिपूर्वक शबरी पहाड़ चढ़ पाऊंगा। बारहवीं उम्र में माँ सदा से बिछुड गयी थी। उसके बाद कितने ही साल बीते। फिर भी विछोह की चोट पर अब भी मरहम का लेप तो लगाता हूँ... अंतिम निमेष में भी माँ मुझे देखना चाहती थी, अंत्येष्टि करने के लिए मैंने भी श्रम किया। लेकिन कुछ भी नहीं हो पाया। उसके बाद जिंदगी न जाने किन किन दिशाओं में बहीं? टेढी-मेढी और शोर मचाती चट्टाने तोड़ती-फेंकती बही, किंतु धीरे-धीरे बहाव की वेगता नहीं रह गयी। ... अब तो करीब-करीब थम जाने की स्थिति में है। स्रोत के बारे में बोध अभी शक्तिशाली हुआ है। वहाँ पर लौट जाना ही है... अब आलस्य नहीं चाहिए। तिरुवनंतपुरम से कोषिक्कोड जानेवाली जनशताब्दि एक्सप्रेस से सबेरे छः बजे रवाना करते तो दुपहर को एक बजे वहाँ पहुँच सकते। उसी दिन रात की नौ बजे की मावेली एक्सप्रेस में यात्रा करके दूसरे दिन सबेरे करीब सात बजे तिरुवनंतपुरम पहुँच सकते हैं। टिकट लेने को सब से ज्यादा उत्साह शंभु को था। साथ आने को लीला को भी दिलचस्पी थी। कल्याणी और सरस्वती भी निमंत्रण पाने के लिए कान दिये हैं। दूनी गाँठ की गठरी को सिर पर रखने के लिए कुछ ही दिन बाकी हैं। गुरुस्वामी ने पूछा कि इस समय एक ऐसी यात्रा की क्या जरूरत है। पहाड पर चढ़कर उतरने के बाद भी सारी यात्रा हो सकती है।... क्यों कोषिक्कोड और काशी की यात्रा एक साथ नहीं हो सकती?

तब सच्चिदानंद का जवाब यही था : प्रांची मेरा जो सहजात है वह जिद करता है। दीर्घकाल के बाद जब परस्पर मिलन हुआ तब मुझे याद दिलाता है.... मेरीहिल्द के हॉली रेड़ीमर चर्च और वहाँ के कब्रिस्तान की..."

गुरुस्वामी ने तब कहा : "स्वामी शरणं... सबका फैसला अय्यप्पा स्वामी करें..."

"आगे की यात्रा अकेले... कोई भी साथ न आवे..."

कल्याणी ने साहस के साथ पूछा : "अकेले जाना क्या जोखिम नहीं है?"

फैसले पर पुनर्विचार करने के लिए लीला और शंभु ने कहा। खिलौना गँवाने वाले बच्चे की तरह सरस्वती रूठ गई।

सच्चिदानंद को मालूम था कि इस प्रकार का रूठना अधिक स्नेह के कारण है... लेकिन क्या किया जाय। सब के चेहरे को देखे बिना ही कह डाला... सब का स्नेह और परवाह मैं जानता हूँ... लेकिन नहीं चाहिए... अगर मैं कोषिक्कोड जाऊ तो मैं अकेले ही जाऊँगा....."

सच्चिदानंद ने सारी बातों का स्मरण अच्छी तरह किया।

"यह कौन-सा स्टेशन है?" हल्की दाढ़ीवाले एक मध्यवयस्क ने सच्चिदानंद से पूछा।

"फ़रोख..."

"यहाँ स्टोप तो नहीं है.... क्रॉसिंग के लिए खड़ी होगी। .... अगला स्टेशन ही है।" उसने आगे कहा : "आज मैं

आपको तिरुवनंतपुरम से ही गौर से देखता हूँ। पोशाक की खासियत के कारण होगा। काले रंग की पोशाक, गले में रुद्राक्ष, माथे पर भस्म यह पूछने की जरूरत नहीं हे कि आप अय्यप्पन है?... आप का शुभ नाम?

"सच्चिदानंद"

"कितना आश्चर्य!..... मैं एक उपन्यास की रचना कर रहा हूँ। उसकी कथा का नायक का नाम भी सच्चिदानंद है। पृष्ठ भूमि शबरिमला तीर्थाटन की है। आपका प्रथम दर्शन करते ही मालूम हुआ कि उसके कथानायक का सादृश्य आपके साथ है। जब सच्चिदानंद नाम भी सुन लिया तो बात पक्की हुई है वह आप ही है.... कोषिक्कोड पहुँचने वाले हैं....."

आज यहाँ टाउनहॉल में एक प्रोग्राम है। वहाँ के सारे कार्यक्रमों का उद्घोषक हूँ.... प्रोग्राम के बाद आज ही लौटूँगा। इसके संगठकों ने मेरे लिए अलकापुरी में रूम बुक किया है....।

तब तो ठीक है.... संयोग हो तो फिर मिलेंगे.....

सच्चिदानंद ने पूछाः "सर का नाम....."

स्टेशन में प्रप्लकॉर्ड के साथ स्वागत करने आये संगठकों को देखने से हुई प्रसन्नता के कारण आत्मविस्मृत होकर जल्दी से चलते वे अचानक मुडकर खड़े हुए और हँसते हुए बोले : "आत्माराम..."

"मैं सर को पहचान गया.... सर मेरे घर में आये थे।..... 'गुरुसमक्षम' पुस्तक के साथ। सर को देखने के लिए कल्याणी सर के घर आयी थी। क्या आप मुझे नहीं पहचानते?..... सच्चिदानंद.... नंदु खो गया। भानुमति को खोजनेवाला ..... सच्चिदानंद ने सारी बातें एक ही साँस में कहा .... लेकिन सुननेवाला कौन है? आत्मराम कीचड उछालती हुई जाती आत्मारामन की कार को ज़रा कौतुक और नष्ट के बोध के साथ देखता खड़ा रहा।

सच्चिदानंद को सब कुछ याद है..... प्रांची के बताये रास्ते, देखने के व्यक्ति, कहने की जगहें.....

रेल्वेस्टेशन के सामने से वेल्लिनाटुकुन्नु जानेवाला बस, कोषिक्कोड वयनाड रोड, नटक्काव, मलाप्परंब, पारोप्पटी, चेवायूर पुलिस स्टेशन, एन.जी.ओ. क्वार्टेर्स, कृष्णन भैया की चाय की दूकान.... निर्मला होस्पिटल, मेरीहिल होली रेडीमर चर्च..... फिर कब्रस्तान। बहुत साफ़ सुधरे कब्रस्थान में श्वेतपत्र से निर्मित कबरों में से सच्चिदानंद ने माँ की कबर का पता लगाया। सच्चिदानंद के मन में कबरिस्थान के विषय में यह धारणा थी कि वह जगह झाड-जंखाड से भरा होगा। वह धारणा सुधर गयी।

"आखिर ! तू आ गया बेटा..... मुझे देखने के लिए....."

'माँ' पुकारता हुआ वह कबर पर लेट गया। हाल ही में पोते सिमेंट की गंध की क्रूस को लिपटता हुआ वह फफक-फफक पर रो उठा।

रोना थमने के बाद धीरे-धीरे जब उठने लगा तब पीछे से दबी हुई बातचीत सुनी। फिर आक्रोश की आवाज़.....

"तुन कौन हो" चोगा पहना हुआ एक मनुष्य का रूप..... पैरिश का पुरोहित होगा.....

सच्चिदानंद ने थोड़ी-सी घबराहट के साथ बतायाः

"मैं सच्चिदानंद हूँ"

"तुम क्यों यहाँ आये हो?" पुरोहित ने पूछा।

"मेरी माँ यहाँ सुषुप्ति में है.....।"

"ओह! तुम अलेक्स हो प्रांची का सहजात....."

"आओ....." पुरोहित उसको पैरिश भवन की ओर ले गये। पुरोहित के साथ खड़े होनेवाले ईसा की स्तुति बोलकर छँट गये।

"प्रांची ने कहा था..... सब कुछ मृत आत्माओं के विशुद्ध दिन में कब्र को साफ़ करने को और क्रूस में सीमेंट पोतने और रंगसाजी करने और फूलों को बिखरने एवं बत्ती जलाने को कहा था। दुनिया के किसी भी कोने में हो, प्रांची यहाँ आएगा।

इस बार भी आया। नवंबर दो को। आज माँ के नाम पर स्तोत्र पूजा हुई..... सबेरे अनाथ-मंदिर में अन्नदान भी हुआ। प्रांची का एक मित्र है। वह निर्मला हॉस्पिटल के सामने एक पटरी दुकान चलाता है। उसका नाम है बेर्कुमेन्स इग्नेष्यस..... उसी ने सारा प्रबंध किया है ..... आप कब शबरी पहाड़ चढ़ते हैं?" उन्होंने पूछा।

सच्चिदानंद ने जवाब दिया:

"दो दिन के बाद....." जब सच्चिदानंद बिदा लेने लगा तब पुरोहित ने कहा:

"ठहरो.... इसे भी ले जाओ", कहते हुए उन्होंने सच्चिदानंद को जपमाला, माला में पहनने का धार्मिक रूप, विशुद्ध बेनडिक्ट की छोटी सी मूर्ति गद्सेमेन बाग में ध्यानरत ईसा की एक तस्वीर और एक छोटी सी बाइबिल भी दी। फिर कहा:

"चाहे अलेक्स हो या चाहे सच्चिदानंद..... चाहे शरणमंत्र बोलें या चाहे क्रूस का यशगान गायें अच्छा मनुष्य बनना चाहिए। मैं जानता हूँ कि तुम ऐसी एक आत्मा हो। ..... क्योंकि तुम प्रांची का सहजात हो.....। पैरिश भवन से उतरकर, चर्च का आंगन पार कर जब सडक पर उतरने लगा तब सच्चिदानंद की दृष्टि में दीवार पर नक्काशी करता हुआ नाम पढ़ा : फादर जेइम्स अन्नश्शेरी। फिर वह तेज़ी से चला कई जगहों में।

पहले लंबे अर्से तक माँ का कर्मरत मेडिकल कॉलेज ..... फिर प्रांची के जीवन बिताया एन.जी.ओ. क्वार्टस.... प्रांची की पढ़ाई का स्कूल चालप्पुरं का सामूतिरी स्कूल..... देवगिरि कॉलेज..... आत्ममित्र गायक अनिलकुमार के साथ समय बिताया समुद्र का किनारा..... तली में स्थित राज भैया का पुस्तकालय..... क्या सब को देख पायेगा.....

".... भाई! यह मैं हूँ..... बेर्कु.... इस में चढ़ें.... सारा प्रबंध प्रांची भैया का है...." ऑटोरिक्शा के साथ बेर्कुमेन्स इग्नेष्यस। इग्नेष्यस वाचाल हुआ:

"प्रांची भैया का कोई ठिकाना नहीं.... पता नहीं कि कब आते हैं और कब जाते है? कोई पूर्व सूचना नहीं है। पता नहीं चलता कि कब अप्रत्यक्ष हो जाते हैं?..... मैं यहाँ के अनाथालय में पला.... फिर मैंने उसे छोडा। उसके बाद उन्होंने मेरी पढाई का प्रबंध किया, पटरी दूकान मेरे लिए प्रबंध किया..... मनुष्य रूप में वे देवता हैं.... विदा लेते समय उसे सिर्फ एक ही बात कहनी है..... प्रांची भैया नेकी से भरा मनुष्य .....!"

मिठाई स्ट्रीट से चलता हुआ जब सच्चिदानंद मानांचिरा पहुँचा तो उसको गायक अनिलकुमार की याद आयी। पून्नालिल चौक का ऐश्वर्या अपार्टमेंट। वहीं वह रहता है..... पैदल चलने की ही दूरी है, एक आदमी ने कहा ..... चलते-चलते जब टाउनहॉल के समीप पहुँचा तो वहाँ पर बडी भीड़ थी। हिमालय के योगी मधुकरनाथ महाराज का गीता पर भाषण....

सच्चिदानंद ने सोचा कि आगे कुछ न सोचना है.... नहीं सोचना भी चाहिए.... इसीलिए कि यह कॉवरिया स्वामी द्वारा कथित नया मोड है.... गुरुगृपा से प्राप्त रास्ता है.... 'गुरुसमक्ष' पुस्तक .... क्या लीला को बुलाऊँ?..... नहीं.... किसी को भी न बुलाऊँ.... पहले किसी को न बताऊँ.....

जब समय आएगा तब मालूम हो जाएगा। बडी भीड थी सभा हॉल में। सभा खचाखच भरी थी। इसलिए बाहर ही खड़ा रहूँ। दर्शन नहीं मिले तो भी सुन सकता हूँ। इसी बीच कोई आगे बढ़कर स्नेहादरपूर्वक सच्चिदानंद का हाथ पकड़कर हॉल के भीतर ले जाने लगा। ..... सब से आगे की एक खाली सीट की तरफ़..... मधुकरनाथ महाराज एक पीठ पर आसीन थे। माइक्रोफ़ोन की तरफ़ मुख किये हुए हैं।

सच्चिदानंद उनका वंदन करने लगने के पहले ही उन्होंने सच्चिदानंद का वंदन किया। सच्चिदानंद को लगा कि क्या सपनों की दुनिया में हो। संदेह के कारण उसने स्वयं अपने गाल पर नोचकर देखा। सच्चिदानंद को हॉल की तरफ़ ले जानेवाले युवक ने कहा:

"यों ही नोचकर दर्द पाने की जरूरत नहीं है.... आपने स्वप्न में खड़े आत्माराम को देखा? उन्होंने ही

आपको इधर ले आकर यहाँ बिठाने के लिए कहा है। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि आपका नाम सच्चिदानंद है और आत्माराम द्वारा लिखे जा रहे उपन्यास का नायक है। और आप गुरुजी के दर्शन मात्र के लिए आप तिरुवनन्तपुरम से यहाँ आये हैं और आप दोनों मिलकर ही ट्रेन में यात्रा कर रहे थे।"

"अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरं....."

गुरुवंदन के पश्चात सीधे भगवद्गीता की ओर.....पंद्रहवें अध्याय की ओर।

मानव जीवन का लक्ष्य क्या है? लक्ष्यप्राप्ति के मार्ग क्या-क्या हैं..... ये सारी बातें भगवान ने बता दी है। अर्जुन हमारा प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरे अध्याय में आरंभ होनेवाले तत्त्वविचार का पर्यवसान है पुरुषोत्तम योग नामक पंद्रहवाँ अध्याय। अहंकार का अंत होना चाहिए, अज्ञान मिटना चाहिए। विषयासक्ति से अतिजीवित होना चाहिए। आध्यात्मिक विषय में निष्ठा अपेक्षित है। वासनाओं को भुला देना चाहिए। सुख-दुःख द्वन्द्वों को स्थितप्रज्ञ होकर निरीक्षण करना चाहिए। क्या कर पाओगे? सच्चिदानंद को यह संदेह हुआ कि क्या वह भी गुरुजी के प्रश्नों को ही लक्ष्य बना रहा है.....। शायद आत्माराम को उपन्यास के मुख्यपात्र को इस प्रकार गुरुसमक्ष पहुँचना होगा। वास्तव में उनके ऐसे एक उपन्यास की रचना करने का और मेरे सादृश्य के पात्र के सृजन करने का लाभ आत्यंतिक रूप से मुझे ही है। "हे परिशुद्धात्मा अर्जुन, इस प्रकार अति रहस्यपूर्ण इस पुरुषोत्तम तत्त्व का साक्षात्कार करने के लिए अपनी बुद्धि का उपयोग करोगे तो तुम कृतकृत्य बनोगो" गुरुजी ने भाषण समाप्त किया।

कुछ लोग संदेहों के साथ उठ खड़े हुए। ऊपर जड, नीचे शाखाओं समेत खड़ा अविनाशी वटवृक्ष, छंद उसके पत्ते हैं। यह तत्त्व जाननेवाला वेदज्ञ। प्रथम श्लोक के ज़्यादा स्पष्टीकरण के साथ फिर गुरुजी। आखिर पादनमस्कार की धक्का.... उसके लिए बनी लंबी पंक्ति। उसमें सर्व प्रथम सच्चिदानंद....।

सच्चिदानंद ने इस जन्म की समस्त व्यथाओं को उन पादों पर रखा। उन पादों ने व्यथा के भार को थाम लिया। उस के सिर पर जो हाथ रखा उससे सच्चिदानंद को लगा कि जल बह रहा है। हाँ..... यह स्नान है.....दूसरा बपतिस्मा है.....।

फिर उन्होंने सच्चिदानंद के कंधों पर थपथपाया। हाथों को पकडकर उठाया। फिर सच्चिदानंद से कहा : "पुरुषोत्तम ..... का अध्ययन कर ध्यान करो..... यही काफी है..... सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

जब सच्चिदानंद टाउन हॉल से उतरने लगा तो उस के नज़दीक आत्माराम तेज़ी से आया। मैत्री को सुदृढ़ किया. यह अश्वादन भी दिया कि फिर मिलेगा। तब सच्चिदानंद ने हँसते हुए पूछा :

"आप का उपन्यास कहाँ तक हुआ? क्या समाप्त होनेवाला है? क्लाइमेक्स क्या होगा....?

आत्माराम ने कहा:

"करीब-करीब पूरा हो रहा है.....क्लाइमेक्स का निर्णय नहीं किया है.... वह स्वाभाविक रूप से हो जाएगा। वैसे भी क्लाइमेक्स को पहले ही जान लेने से फिर क्या मज़ा आएगा। चाहे कथा हो या जीवन थोड़ा-सा सस्पेन्स तो होना चाहिए!"

रेल्वे स्टेशन पहुँचकर जब सच्चिदानंद ने अपने बैग को कंधे पर रखा तभी उसने अधिक बोझ के विषय का स्मरण किया। एक किलो बनाना चिप्स, कोषिक्कोड की कीर्ति बढ़ानेवाला प्रवासियों को प्रियंकर एक किलो हल्वा..... क्या इसको इतना भार हो सकता है? माँ की कब्र में मन का सारा भार मिटने लगा था। ..... जब गुरुजी के चरणों पर गिरा तो सारा भार एकदम मिट गया। इस समय मन पूर्ण रूप से शून्य है।

आगे का दौत्य अब जल्दी होगा..... पहले भानुमति.... फिर नंदु। रास्ता साफ़ हुआ है। आगे नया मोड। आत्माराम के उपन्यास में भी ऐसा ही एक मोड होगा। सब प्रतीक्षा करके देखा जाएगा। सच्चिदानंद सहयात्री महिला से अदला-बदली में माँग कर पायी साइड लोवर बर्थ पर शरण मंत्र,

पुकारते हुए वह सोने को लेट गया।

"क्या वहाँ से निकले?" लीला का फ़ोन

"गाडी निकली.... अभी-अभी मैं लेटा....."

"अच्छा..... यहाँ सब लोग हैं। कल्याणी, सरस्वती और गौरीशंकर..... गुरुस्वामी को ज़रा तनाव-सा। एक दिन केलिए जब अलग हुआ तब सब को तनाव..... पत्नी और बेटे की स्थिति शिला के समान है....." स्नेह एवं उपालंभ के स्वर में लीला ने कहा।

"एक विशेष बात कहने को है। वहाँ आकर बताने को सोचकर मन में दुबा रखा था..... लेकिन बिना कहे रहा नहीं जाता। कॉवरिया स्वामी का भविष्य कथन सच होने जा रहा है....."

"स्वामी शरणं" लीला ने कहा : "बताओ सच्चि.... जल्दी बताओ....."

"गुरु समक्षं ..... मधुकरनाथ महाराज का दर्शन किया। उनकी वाणी सुनी..... मैं उनके पैरों पर गिरा। उन्होंने मेरे सिर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। मुझे क्रियायोगदीक्षा भी दी।

वह आत्माराम सर भी वहाँ थे। इसी ट्रेन में वे भी हैं। अलग कोच में..... उधर को हमने साथ-साथ यात्रा की..... फिर माँ की कब्र में..... वहाँ सब कहीं सिर्फ प्रांची की भलाई से भरी कथायें.....

"सब अय्यप्प स्वामी की कृपा..... अभी लेट जाओ..... मैं सारे विशेष सब को बताऊँगी....।"

तंपानूर रेल्वेस्टेशन। बिना जल्दी के मावेली एक्सप्रेस प्लेटफार्म की ओर पहुँच रहा है। फूटे कनटस्तर से बहती दही की एक बूँद को भी ज़मीन पर न गिरने देकर बडी सावधानी से अपनी चोंच से निगलते कौए और मोटे-फूलते बोरों से गिरने की संभावनावाले दानों के लिए ध्यानमग्न कबूतर पंख फड़फड़ाते उडे..... धीरे-धीरे उतरनेवाले.....कूदने और दौडने को तैयार होनेवाले ..... ऊँ को दूर करने के लिए मुँह पोंछनेवाले ..... वर्कला स्टेशन आने पर पुराने वस्त्र बदलकर नये वस्त्र पहने परिवार से फ़ोन पर संपर्क करनेवाले..... भीड कम होने पर धीरे से उतरने के लिए शान्त सच्चिदानंद की नज़र में तीक्ष्ण नयनों से देखती एक स्त्री की सूरत पड़ी.....

"भानु..... भानुमति...." वह सुनती नहीं। वह जल्दी जल्दी चलकर अदृश्य हो रही है। उसके पीछे आत्माराम सर तो है..... नहीं लगता कि उन्होंने भानुमति को देखा हो। वे दूसरे किसी को बात करने चले जा रहे थे।

"भानु..... यह मैं हूँ सच्चिदानंद....."

फिर एक चीख निकली। सच्चिदानंद गिर पडा है। ट्रेन से गिरा हो..... या वहाँ पर दही के कन्टस्तर या अनाज के बोरे से टकराकर गिरा हो। या किसी ने जानबूझकर गिराया हो ..... अनजाने कोई कोई उस पर पैर रखते हुए गुज़र गये। ..... वह औंधा गिर पड़ा था। अनेक हृदयालुओं ने उसको घेर लिया। लोगों ने कई रायें दी.... सिर चकराकर गिरा..... किसी ने धकेल दिया है..... एक सज्जन लगता है..... खून टपकता है ..... शबरिमला जाने को माला धारण किया अय्यप्पन है.... रेल्वे पोर्टर इकट्ठे हुए..... इसी बीच पुलिस भी आयी ..... जनरल हॉस्पिटल ले जाये.....।

दर्दनाक स्वर में फोन में सच्चिदानंद ने लीला को पुकारा।

लीला ने सरस्वती को बुलाया।

गुरुस्वामी और शंभु मोटर-साइकिल में अस्पताल की तरफ़ लपके। एक्स-रे फिल्म देखकर सरस्वती परेशान हुई। दाहिने घुटने पर छोटा-सा फ्राक्चर है। डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। कुछ भी हो, अस्पताल में पड़ने की नौबत तो नहीं आयी ..... वह भी इस कोरोणा के समय में..... सरस्वती यह सोचकर सिसकने लगी कि क्या सच्चि भाई पहाड पर चढ़ सकते हैं।

सच्चिदानंद ने फूट-फूट कर रोते हुए शरणमंत्र पुकाराः

"स्वामिये शरणमय्यप्पा....."

(क्रमशः)

डॉ.के.जी. प्रभाकरन सुगम हिंदी पुरस्कार वितरण-तृश्शूर जिला पारमेकाव विद्यामन्दिर स्कूल में उद्घाटन कर रहे हैं।

RNI No. 7942/1966
Date of Publication : 15-07-2023
Date of posting : 20th of Every month

KERALJYOTI

JULY 2023

Vol. No. 60, Issue No.04
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

सुगम हिंदी परीक्षा का पुरस्कार वितरण:एरणाकुलम-इडुक्की जिले का उद्घाटन जस्टिस वी.के.मोहन भवन्स स्कूल में कर रहे हैं।

पालक्काड़ जिले का उद्घाटन डॉ.ए.अरविन्दाक्षन कर रहे हैं।

आलप्पुषा जिले का उद्घाटन श्री.जी.सुधाकरन (पूर्व मंत्री) कर रहे हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व. मधु की द्वारा प्रकाशित। राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित तथा प्रो.डी.तंकप्पन नायर द्वारा संपादित।

Published by the Secretary, Adv. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695 014;
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695 014
and edited by Prof. D. Thankappan Nair